हमारे साहित्य की रूपरेखा

लेखक

श्री पं० कृष्णशंकर शुक्ल एम. ए.

प्रकाशक

नंद किशोर ऐंड ब्रदर्स

बनारस ।

प्रथमावृत्ति] शारदीय नवरात्र, १९९६ [मूल्य १)

उपक्रम

प्रस्तुत पुस्तक हिंदी-साहित्य की रूपरेखा मात्र है। पर रेखाकार ने ऐसी कुशलता के साथ इसे सागोपाग उतारने का प्रयास किया है कि इसमें हमारे साहित्य के बहुत ही सच्चे और भव्य रूप के दर्शन होते हैं। यद्यपि कई रेखा-चित्र हमारे सामने आ चुके है पर इसमे ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण औरों मे से इसे पृथक् कर लेना बहुत ही सरल है। प्रायः साधारण कोटि के चित्रकारों ने जिस रूप का आभास देने का यत्न किया है उसमे पीठिका अत्यत भ्रमपूर्ण हो गई है। रूपभेद न कर सकने के कारण वे देश के इतिहास और साहित्य के इतिहास को एक ही मानकर चले हैं। पर यथार्थ रूप दूसरा ही है। हमारे साहित्य के रूप भी अनुदार प्राचीन संस्कृत साहित्य की परपरा मे प्राप्त रूपों से मिलते हैं, देश के राजनीतिक इतिवृत्त के रूप से नहीं। यह एक ऐसी विशेषता है जिसके कारण यह इतिहास-हिंदी की एक महत्त्वपूर्ण रचना-केवल अध्येताओं की ही दृष्टि से नहीं मर्मज्ञों की दृष्टि से भी माना जाएगा।

इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमें हृदय और बुद्धि दोनों का समुचित प्रयोग दिखाई देता है। हृदय द्वारा लेखक साहित्य की समृद्धि पर प्रफुल्ल भी होता चलता है और बुद्धि द्वारा विवेचन एव निरूपण का मार्ग भी निकालता चलता है। यही कारण है कि धाराप्रवाह बहुत ही स्वच्छ, मनोहर और गम्भीर दिखाई पड़ता है। अवगाहन के लिए आकर्षण भी है और मार्जन के अनतर शीतलता का लाभ भी। पिपासुओं की पिपासा की शाति

इसी लिए इसके द्वारा जितनी अधिक हो सकती है और मनस्तुष्टि का जैसा लाभ इसके द्वारा हो सकता है, वह कहने की वात नहीं, रसपान करके अनुभव करने की है ।

तीसरी विशेषता यह है कि आपने समस्त वाङ्मय के वृहत् स्वरूप का भी सकेत कर दिया है, केवल शुद्ध साहित्य का आकार भर ही खींचकर नहीं रख दिया है । गद्य और पद्य के भेद और कालों के विभाजन मे आपने पक्की सहृदयता का परिचय दिया है । वर्तमान लेखकों एव कवियों की विशेष-ताओं का ऐसी सूक्ष्मता से उद्घाटन किया है कि प्रत्येक को एक सामान्य विद्यार्थी भी भलीभाँति पहचान सकता है । प्राचीन को अपेक्षा वर्तमान काल की नवीन धारा अनेक वल खाती हुई चली है और उसका विस्तार भी अनेक शाखाओं के रूप मे देखा जा सकता है । इसलिए यदि आधुनिक काल का विवेचन बड़े परिमाण मे देखकर कोई चौंके तो व्यर्थ है । जिस प्रकार लेखक ने हिंदी साहित्य क्या वाङ्मय मात्र की गति विधि को परखने का उद्योग किया है उससे मुझे पूर्ण आशा है कि साहित्य-रसिकों के द्वारा इसका बहुत ही अच्छा सम्मान होगा ।

शारदीय नवरात्र, १९९६
ब्रह्मनाल, काशी

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

विषय - सूची

हमारे साहित्य की रूपरेखा

हमारे साहित्य की रूपरेखा

हमारे साहित्य का स्वरूप

साहित्य का इतिहास जाति के हृदय और मस्तिष्क का इतिहास है। साहित्य के इतिहास का परिचय प्राप्त करने के लिये उन परिस्थितियो का भी परिचय प्राप्त करना आवश्यक है जिनसे सस्कार ग्रहण करके किसी जाति के हृदय और मस्तिष्क अपना कोई विशिष्ट स्वरूप प्राप्त करते हैं। हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखनेवालों ने प्राय' यह मान लिया है कि जिस समय से हिन्दी-साहित्य प्रारम्भ होता है उसी समय से मानों भारतवर्ष का भी प्रारम्भ होता है। यदि उन्होंने यह न माना होता तो उनके लिये उन प्राचीन संस्कारों, प्रवृत्तियो आदि का भी उल्लेख करना पडता जिनसे हमारा साहित्य सदा प्रभावित रहा है। प्रायः लोगों ने राजनीतिक परिस्थितियों को बहुत अधिक महत्त्व दिया है यहाँ तक कि केशव और विहारी की शृगारी रचनाओं का पूरा दोष मुगल-शासन पर मढ़ा गया है। राजनीतिक परिस्थितियो से हमारा साहित्य प्रभावित तो अवश्य हुआ है पर उतना नहीं जितना लोगों ने प्राय' समझ रखा है। पिछले काल में भारतवासियो में राजनीतिक चेतना प्रायः सुषुप्त रही है। वर्णव्यवस्था के दृढ़ सगठन, बडे नगरों से बहुत दूर पड़नेवाले ग्रामों में निवास, धार्मिक प्रवृत्ति, भाग्य पर विश्वास

तथा लौकिक उत्कर्ष के प्रति उपेक्षा आदि अनेक कारणों से यहाँ की प्रायः जनता राजधानियों के आसपास होनेवाली राजनीतिक हलचलों से अछूती रही है। इसलिये अकबर और औरंगजेब के राज्यकाल को अधिक महत्त्व देकर उनका हमारे साहित्य के साथ अत्यधिक सम्बन्ध जोड़ना बहुत समीचीन नहीं है। यहाँ की धार्मिक प्रवृत्तियों तथा सामाजिक संगठन का साहित्य पर अवश्य ही बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। सबसे अधिक प्रभाव डालने-वाली बात जो हमारे साहित्य मे सर्वत्र लक्षित होती है वह है हमारा प्राचीनता-प्रेम। भाषा तथा भाव दोनों में हम प्राचीनता-प्रेमी हैं। यदि ध्यान से देखा जाय तो यह मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है जो सर्वत्र ही किसी न किसी रूप में लक्षित होती है। पर अपने प्रतिपादन को इतना व्यापक न बनाकर हम अपने को सीमित रखेंगे। हमारे कवि सदा इस बात का प्रयत्न करते रहते थे कि उनकी भाषा में प्राचीन शब्द और प्रयोग अधिकाधिक मात्रा मे आवें। प्राचीन भावों और विषयों की परम्परा को भी हम अपने साहित्य में सदा संरक्षित पाते हैं। आदिकवि के द्वारा जो रामकथा प्रारम्भ की गई वह अभी उस दिन तक फिर चिर-गाँव में दोहराई गई। हमारे शृंगार रस की शैली भी बहुत प्राचीन है। हम सदा से शृंगारी बातों को बहुत कुछ खोलकर कहते रहे हैं। संस्कृत के बहुत प्राचीन काल के कवियों तक के द्वारा भी शृंगार के बहुत ही नंगे चित्र उपस्थित किये गये हैं। यह क्रम हमारे साहित्य में सदा चलता रहा है।

अपने साहित्य की एक बहुत बड़ी विशेषता की ओर भी

हमें ध्यान देना चाहिए। हमारा साहित्य सदा दूसरे साहित्य से आक्रान्त रहा है। इसे बहुत दिनो तक सार्वजनिक स्वीकृति नहीं मिल पाई। बहुत दिनो तक संस्कृत-साहित्य का बोलबाला रहा। तुलसीदास तथा मलिक मोहम्मद जायसी आदि को 'भाषा-कविता' लिखते समय अपना पक्ष-समर्थन करना पड़ा है। तुलसीदास की "का भाषा का सस्कृत, प्रेम चाहिए साँचु" पक्तियों से यही ध्वनि निकलती है कि उस समय देशी भाषा को कोई महत्त्व नहीं प्राप्त था। सस्कृत के प्रकांड तथा पुष्ट साहित्य का हमारी भाषा पर सदा प्रभाव पड़ता रहा है। सस्कृत के खुले खजाने से रत्न लूटने में हिन्दीवालों ने कभी संकोच नही किया। हमारा सारा वैष्णव-साहित्य श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि का ऋणी है। उसी प्रकार रीतिकाल की प्राय: शृंगारी रचनाएँ अपना मूल सस्कृत-साहित्य में रखती हैं। बिहारी की तो सारी करामात इसी साहित्य के भरोसे थी। उसी प्रकार तुलसी, केशव, पद्माकर आदि सभी कवि उस साहित्य के ऋणी हैं। सस्कृत से हिन्दी ने जो कुछ उधार लिया है उसे देकर हिन्दी के पास बहुत कुछ नहीं बच रहेगा। पर माता से प्राप्त सम्पत्ति उधार की नहीं समझी जाती। यही हिन्दी के पक्ष में कहा जा सकता है।

सस्कृत के पश्चात् अरबी, फारसी तथा उर्दू के प्रभाव का युग आया। सम्पूर्ण मुसलमान राज्यकाल में इन भाषाओं का बोल-बाला रहा। सैकड़ों वर्ष तक हिन्दी का कोई महत्त्व नहीं था। दरबारों तथा शिष्ट साहित्य-समाजों में इन्हीं भाषाओं का

प्राबल्य रहा। हिन्दुओं ने भी 'जैसी चले बयारि' वाली नीति का अनुसरण किया। फारसी आदि विदेशी भाषाओं का अध्ययन बडे उत्साह से प्रारम्भ हुआ। बहुत से हिन्दू तो अपने फारसी-ज्ञान के भरोसे मुसलमानों को उन्हीं के अखाडे मे पछाड़ने का दम भरने लगे। इसका हमारे साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। अनेक विदेशी भाव हमारे साहित्य मे आये। उदाहरण के लिये हमारी शृंगारी कविताएँ उपस्थित की जा सकती हैं। हमारी परम्परा के भीतर शृगारी रचनाओ में बीभत्स दृश्यों को स्थान नहीं है। पर फारसी में ऐसा होता आया है। उनके यहाँ विरह-व्यथा की व्यजना के भीतर खून, खजर आदि का भी सहारा लिया जाता है। कटाक्ष कुछ पैने तो हमारे यहाँ भी माने गये हैं पर उनके आघात से खून के पनाले बहते दिखाना हमारी शिष्ट रुचि के उतना अनुकूल नहीं है। फारसी आदि भाषाओं के सम्पर्क से हिन्दी ने ये सब बातें भी सीखीं। जायसी, विहारी आदि अनेक कवियों की रचनाओं से उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं जिन पर फारसी का स्पष्ट रंग चढ़ा है। इस काल में भाषा में अनेक विदेशी शब्द आये। अनेक शब्द तो बिगाड़ कर लिये गये और हमारी भाषा में घुलमिल गये। पर अनेक शब्द अपनी पठानी ऐंठ के साथ अपने स्वरूप को रक्षित रखते हुए हिन्दी के आँगन में बेखटके चहल-कदमी करते फिरते हैं।

फारसी आदि के पश्चात् अँगरेजी का राज्य आया। इस समुन्नत साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों का प्रभाव हमारे साहित्य पर पड़ा है।

हमारे हृदय में देशभक्ति की भावना जगाने का बहुत कुछ श्रेय ऑंगरेजी साहित्य को है। इसी प्रकार प्रकृतिचित्रण, समाज-सुधार आदि के भावों का समावेश इसी साहित्यिक सम्पर्क के फलस्वरूप है। छायावादी नाम से अभिहित कवि ऑंगरेजी साहित्य के बहुत ऋणी हैं। पन्त, महादेवी आदि की अनेक रचनाओं में ऑंगरेजी कविताएँ स्पष्ट रूप से झलक जाती हैं। ऑंगरेजी का प्रभाव हमारी पदावली पर भी पड़ा है। हमारे यहाँ अनेक शब्द ऑंगरेजी के अनुकरण पर गढ़ लिये गये हैं। अनेक मुहावरों का अक्षरश. अनुवाद कर लिया गया है। ऑंगरेजी का प्रभाव वाक्य-सगठन पर भी पड़ा है। प्राय लेखक ऑंगरेजी ढग पर वाक्य निर्माण करने लगे हैं। ऑंगरेजी की लाक्षणिक शैली से हमारी भाषा बहुत प्रभावित हो रही है। यह प्रभाव कभी कभी तो भाषा की बोधगम्यता पर भी आघात करता प्रतीत होता है।

इस प्रकार हमारी भाषा सदा दूसरी समुन्नत भाषाओं से प्रभावित होती रही है। इससे अनेक लाभ तो अवश्य हुए पर इसके द्वारा हमारे साहित्य के स्वतन्त्र विकास मे बाधा ही उपस्थित हुई। लोगों मे अपनी ऑंखों से न देखकर दूसरों की ऑंखों देखने की लत पड़ी। प्रत्येक साहित्य को अपनी स्वतन्त्र सत्ता के भरोसे आगे बढ़ना चाहिए। लोगों को ऑंगरेजी की पोथियों से उडाने के स्थान में प्रकृति की खुली पोथी अपनी ऑंखों पढ़ना चाहिए।

हमारे साहित्य का प्रारम्भ

किसी भी साहित्य के प्रारम्भ की कोई विशेष निश्चित तिथि नहीं दी जा सकती। यही सत्य हमारी भाषा पर भी लागू है। अपभ्रंश भाषा की प्राप्त पुस्तकों में हम हिन्दी के क्रमिक विकास की परम्परा का पता लगा सकते हैं। अपभ्रंश धीरे धीरे देशी भाषा के रूप में परिवर्तित हो रहा था। गुजरात के प्रसिद्ध जैन विद्वान हेमचन्द्र विक्रम की बारहवीं शताब्दी में विद्यमान थे। इन्होंने अपने प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' मे अपभ्रंश के अनेक पद्य उदाहरण-रूप में उपस्थित किये हैं। ये सब उदाहरण स्वयं हेमचन्द्र के रचे हुए नहीं हैं। देखने से प्रतीत होता है कि इनमें से अनेक सैकड़ों वर्ष पुराने हैं। इन उदाहरणों में हम हिन्दी को स्वरूप ग्रहण करते हुए पाते हैं। यही निष्कर्ष उस काल की अन्य रचनाएँ को देखने से भी निकलता है। संवत् ६६० के आसपास देवसेन नामक जैन विद्वान् ने श्रावकाचार नामक पुस्तक दोहों में लिखी। इसकी भाषा का स्वरूप पुरानी हिन्दी के बहुत पास पहुँचा हुआ है। देखिए—

जो जिण सासण भाषियउ सो मइ कहियउ सारु।

जो पाले सइ भाउ करि सो तरि पावइ पारु।

इस प्रकार दशवीं विक्रम शताब्दी के प्रारंभ से ही हम

हिन्दी का प्रारंभ मान सकते हैं। अपने साहित्य के इतिहास का कालविभाग विद्वानों ने इस प्रकार किया है:—

आदिकाल अथवा वीरगाथाकाल—संवत् १०५० से १३५० तक
पूर्व मध्यकाल अथवा भक्तिकाल—संवत् १३५० से १७०० तक
उत्तर मध्यकाल अथवा रीतिकाल—सवत् १७०० से १९०० तक
आधुनिककाल अथवा खड़ी बोली काल—१९०० से १९९५ तक

किसी कालविशेष में किसी विशेष प्रकार की रचनाओं की प्रचुरता देखकर ही उस काल का नामकरण किया गया है। पर प्रचुरता से यह तात्पर्य नहीं है कि इस समय किसी अन्य प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं रही हैं। वीरगाथाकाल में वीर रस की रचनाओं की प्रचुरता रही, आगे चलकर यह क्रम शिथिल पड़ा। साहित्य ने दूसरा रंग-रूप पकड़ा। पर साहित्य के भिन्न रूप पकड़ लेने पर भी वीरों की प्रशसा करनेवाली वाणी कभी शुष्क नहीं हुई। रीतिकाल की सुकुमार शृंगारी रचनाओं के कलरव में भी भूषण की ओजस्विनी वीरवाणी श्रवणगोचर हुई। इसी प्रकार अन्य कालों में भी एक काल के पश्चात् किसी भिन्न काल का प्रारम्भ बहुत धीरे धीरे तथा अलक्षित प्रकार से होता रहता है। जब किसी कालविशेष की प्रवृत्तियाँ बहुत स्पष्ट हो जाती हैं तो उस काल का उन प्रवृत्तियों से प्राप्त एक नवीन नामकरण हो जाता है। वीरगाथाकाल के पहले की जो रचनाएँ प्राप्त हुई हैं उनके विषय प्रायः नीति, शृगार तथा वीर रस रहे हैं। नीति की रचनाएँ प्रायः धार्मिक बौद्धों और जैनों के द्वारा हुई हैं। देशी भाषाओं के महत्त्व को सबसे पहले

स्वीकार करनेवाले बौद्ध और जैन ही हैं। इन्हीं की कृपा से देशी भाषाएँ सिर उठाकर खड़ी हो सकीं। अनेक जैन विद्वानों को धार्मिक साहित्य की सृष्टि में योग देते हुए हम हिन्दी के प्रारम्भिक युग में पाते हैं। नीति के अतिरिक्त प्रारम्भिक काल की जो अन्य रचनाएँ प्राप्त हुई हैं वे शृंगार और वीर रस की हैं। इस काल की शृंगारी रचनाओं मे वीर रस का एक पुट दिया हुआ मिलता है। रीतिकाल की शृंगारी रचनाओं से ये आरम्भकाल की रचनाएँ भिन्न प्रकार की हैं। इस काल में यदि कोई वियोगिनी दिखाई पड़ती है तो हमें यह समाचार भी मिलता है कि उसका पति अपने शत्रु से लोहा लेने कहीं रणभूमि को गया है। इस समय नायकरूप में जिनकी प्रतिष्ठा हुई है वे प्रायः योद्धा और वीर थे। इस प्रकार हम इस समय शृंगार और वीर का सुन्दर सयोग पाते हैं।

वीरगाथाकाल

हमारे साहित्य का प्रारम्भ राजनीतिक उथल-पुथल के समय में होता है। देश में राजनीतिक अनिश्चितता थी तथा सीमाओं पर से मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हर्ष की मृत्यु हो चुकी थी। इसके पश्चात् कोई केन्द्रीय पुष्ट शासक नहीं दिखाई पडता। यह काल राजपूतों के उत्थान का काल है। दिल्ली, अजमेर, कन्नौज आदि में हम अनेक राजपूतों को प्रतिष्ठित पाते हैं। इनमें कोई इतना प्रबल नहीं था जो दूसरों को दबाकर केन्द्रीय शासन को पुष्ट करता। फलतः ये प्रायः परस्पर में लडा करते थे। आश्चर्य तो इस बात को देखकर होता है कि इन युद्धों का कारण देश विजय करना नहीं होता था। अनेक युद्धों का कारण तो कन्याएँ बनाई गईं। राजपूत कन्यादान में प्रायः अपनी हेठी समझते थे। जाति की कृत्रिम ऊँच-नीच विभिन्नताओं को भी अधिक महत्त्व दिया जाता था। प्रत्येक को अपनी जाति ऊँची प्रतीत होती थी तथा दूसरों की नीची। यदि किसी ऊँची जातिवाले की कन्या ब्याहने का प्रस्ताव नीची जातिवाले ने कर दिया तो खून की नदियाँ बह जाती थीं। ऐसे प्रश्न आये दिन खड़े रहते थे। कभी कभी तो विवाह-मडप के तले भी तलवारें चल जाती थीं। यह तो देश की भीतरी दशा थी। बाहर से मुसलमानों के

आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। सम्पूर्ण देश के शत्रु विदेशी आक्रमणकारियों का सामना मिलकर करना चाहिए इस सीधे सरल सत्य को भी राजपूत सरदारों ने न समझा। यद्यपि राजपूत अनोखी वीरता से लड़े पर एक एक करके। विदेशियों को यह स्थिति अधिक अनुकूल पड़ी। वे एक के पश्चात् दूसरे राजा को परास्त करते रहे। इस प्रकार यह तलवार के महत्त्व का युग था। इस युद्धकाल में अनेक वीर पुरुष हमारे सामने आते हैं जो किसी भी देश का मुख उज्ज्वल कर सकते। राजनीतिक चातुर्य्य की दृष्टि से ये बाँके राजपूत भले ही कच्चे रहे हों, पर तलवार चलाने में कच्चे नहीं थे। इनकी वीरता की गाथाएँ अब भी हमारे शरीर तथा हृदय को स्फूर्ति प्रदान करती हैं। इन वीरों पर उस समय की जनता तथा कवि सच्चे हृदय से मुग्ध हुए। इन्हीं रचनाओं के आधार पर इस काल का नाम वीरगाथा-काल हुआ है। अब हम इस समय की कुछ पुस्तकों का उल्लेख करते हैं।

खुमानरासो:—इस ग्रंथ का रचयिता दलपति विजय नामक कोई कवि माना जाता है। इसमें जिस खुमान का वर्णन है उसके समय का अनुमान संवत् ९०० के आसपास किया जाता है। इस समय ग्रंथ की जो प्रति प्राप्त है उसमें महाराणा प्रताप तक के युद्धों का वर्णन है। ये पिछले अंश तो अवश्य ही प्रक्षिप्त हैं। विद्वानों का अनुमान है कि इस ग्रंथ के अनेक अंश अवश्य ही प्राचीन काल के हैं।

बीसलदेवरासो:—यह नरपति नाल्ह नामक कवि की

रचना है जिसके अनुसार ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १२१२ है। इस ग्रंथ में किसी युद्ध का वर्णन नहीं है। पर एक वीर की जीवनगाथा होने के नाते यह वीरगाथाओं के भीतर आ जाता है। उस समय की साहित्यिक भाषा का ढाँचा प्राचीन व्रजभाषा का एक स्वरूप हुआ करता था। जो अपभ्रंश तथा प्राकृत से बहुत कुछ प्रभावित रहता था। यह भाषा पिंगल भाषा कहलाती थी। राजपूताने की देशी भाषा में भी रचनाएँ होती थीं जो डिंगल कहलाती थी। बीसलदेवरासो की भाषा डिंगल भाषा से बहुत कुछ प्रभावित है जिसमें कुछ स्थानों पर खड़ी बोली के भी कुछ प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। ग्रंथ में बीसलदेव उपाधि-धारी विग्रहराज चतुर्थ के जीवन की कुछ काल्पनिक घटनाओं का वर्णन है। चरित्रनायक अपनी रानी राजमती से रूठकर विदेश (उड़ीसा) चला जाता है। राजमती बहुत समय उसके वियोग में बिताती है। कुछ काल पश्चात् बीसलदेव लौट आता है। कवि बीसलदेव का समकालीन प्रतीत होता है। कवि ने सर्वत्र वर्तमान काल ही का प्रयोग किया है। ग्रथ में ताजियाना (कोड़ा) आदि अनेक विदेशी शब्द भी आ गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि निरन्तर गाये जाने से पुस्तक के मूल रूप में बहुत से परिवर्तन हुए। फिर भी इस पुस्तक में हम प्राचीन भाषा के स्वरूप को बहुत कुछ रक्षित पाते हैं।

पृथ्वीराजरासो :—यह ग्रन्थ चन्द बरदाई नामक कवि की रचना है। कवि पृथ्वीराज का सामन्त भी था। उसने पृथ्वीराज के जीवन की सारी घटनाओं को बड़े विस्तार से लिखा है। यह

ग्रन्थ अढ़ाई हज़ार पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इसमें दोहा, कवित्त, छप्पय, आर्या, गाथा आदि अनेक छन्दों का व्यवहार हुआ है। ग्रन्थ की भाषा अव्यवस्थित है तथा उसमें एकरूपता का अभाव है। कुछ स्थानों पर प्राकृत तथा अपभ्रंशकाल की भाषा का द्वित्व तथा सानुनासिक योजना के द्वारा मिथ्या अनुकरण किया गया है। इधर कुछ वर्षों में ग्रन्थ की सूक्ष्म छान-बीन की गई है। रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने यह सप्रमाण सिद्ध-कर दिया है कि इस ग्रन्थ में वर्णित घटनाओं को जब हम ऐतिहासिक अनुसन्धान के आधार पर सिद्ध घटनाओं से मिलाते हैं तो ये सत्य नहीं ठहरतीं। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण ग्रन्थ अप्रामाणिक ठहरता है। भाषा के आधार पर भी ग्रन्थ की प्राचीनता नहीं सिद्ध की जा सकती। अनेक कालों में प्रयुक्त भाषाओं का एक साथ प्रयोग भ्रम को और भी बढ़ाता है। कुछ स्थलों पर सोलहवीं सदी के अनुरूप भाषाशैली मिलती है। ये अंश तो निर्विवाद रूप से प्रक्षिप्त हैं। सब मिलाकर ग्रन्थ की प्रामाणिकता तथा प्राचीनता सन्देह की दृष्टि से देखी जाने लगी है।

जयचन्द्रप्रकाश तथा जयमयंकजशचन्द्रिका :— ये दोनों ग्रन्थ क्रमशः भट्ट केदार तथा मधुकर कवि की रचना माने जाते हैं। पर ये दोनों ग्रन्थ कभी देखे नहीं गये। इन ग्रन्थों का उल्लेख दयालदासकृत 'राठौड़ाँरी ख्यात' में मिलता है।

आल्हा:—यह ग्रन्थ "आल्हाखंड' नाम से प्रसिद्ध है जिससे अनुमान किया जाता है कि यह 'जगनिक' नामक कवि के लिखे ग्रन्थ का अंश है। इस ग्रन्थ की कोई प्राचीन प्रति नहीं मिली है। अन्तर्वेद, बैसवाडा तथा बुन्देलखड में लोग इसे प्राचीनकाल से गाते चले आते हैं। आज से प्रायः सत्तर वर्ष के लगभग हुए जब फर्रुखाबाद के तत्कालीन कलेक्टर मि० चार्ल्स इलियट ने इन गीतों का संग्रह करवाया था। ग्रन्थ में महोबे के दो प्रसिद्ध वीरों–आल्हा तथा ऊदल–की प्रशस्तियाँ हैं। आजकल जो ग्रन्थ प्राप्त है उसमें प्राचीनता के कोई चिह्न नहीं। भाषा बहुत आधुनिक है। फिर भी इस ग्रन्थ के भीतर हम प्राचीन वीरगीतों की आत्मा की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुन सकते हैं। अपने आत्मसम्मान के लिये सर्वस्व उत्सर्ग कर देनेवाले वीरों का स्पष्ट स्वरूप इस ग्रन्थ में देखा जा सकता है। ग्रन्थ प्राचीन नहीं है, पर इसमें भारत की मध्यकालीन वीरता का सच्चा चित्र अवश्य उतरा है। सम्भव है इस ग्रन्थ को सबसे पहले जगनिक ने कढ़ाया हो और लोगों के गाते गाते सैकड़ो वर्षों मे इसने यह रूप प्राप्त कर लिया हो।

वीरगाथाकाल को समाप्त करने के पहले हम खुसरो तथा विद्यापति का और उल्लेख कर देना चाहते हैं। खुसरो स० १३५० के आसपास वर्तमान थे। इनकी पहेलियाँ तथा मुकरियाँ लोगों में अब तक प्रचलित हैं। उस समय काव्य-भाषा का स्थान व्रजभाषा के प्राचीन रूप को प्राप्त था। खुसरो की रचनाओं में हमे खड़ी बोली का रूप मिलता है जो व्रजभाषा

से भी कुछ कुछ प्रभावित है। इन रचनाओं से हम खड़ी बोली के प्राचीन रूप का कुछ आभास पा सकते हैं।

विद्यापति :—इनका रचनाकाल पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है। ये मिथिला देश के एक शैव कवि हैं। पर इनकी रचनाओं में साम्प्रदायिक कट्टरता नहीं है। इन्होंने बड़ी प्रीति से कृष्ण की लीलाओं को गाया है। इनकी रचनाओं पर मैथिली का बहुत प्रभाव है, फिर भी वे हिन्दी के अन्तर्गत आती हैं। बीसलदेवरासो की अपेक्षा इनकी पदावली को लोग अधिक समझते हैं। बंगाली तथा मैथिल भी इन्हें अपनी अपनी भाषा का कवि मानते हैं। इससे अनुमान होता है कि उस समय ये उत्तर की प्रान्तीय भाषाएँ एक दूसरी से इतना दूर नहीं हटी थीं। विद्यापति के कृष्णगीत इस बात का प्रमाण हैं कि हिन्दी में वैष्णव गीतों की जो आगे चलकर बाढ़ आई उसको एक प्राचीन परम्परा प्राप्त थी। बगाली तथा मैथिल कवि बहुत पहले से कृष्ण के गीत गाते चले आते थे। पीछे से बहुत से बंगाली भक्त वृन्दावन की ओर भी आकृष्ट होने लगे थे। बहुत सम्भव है हिन्दी के कृष्णगीतों को इनसे कुछ उत्साह प्राप्त हुआ हो।

भक्तिकाल

बौद्धधर्म का पतन होने पर दक्षिण में अनेक आचार्य हुए। इनमें शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि के द्वारा हिन्दूधर्म के पुनरुत्थान में बहुत सहायता मिली। रामानुजाचार्य द्वारा उपदिष्ट वैष्णव धर्म की ओर जनता अधिक आकृष्ट हुई। वैष्णव धर्म का यह व्यापक प्रवाह ग्यारहवीं शताब्दी से बहना आरम्भ हो गया था। तेरहवीं शताब्दी में स्वामी मध्वाचार्य जी द्वारा गुजरात में वैष्णव धर्म का प्रचार किया गया। आगे चल कर रामानन्दजी तथा वल्लभाचार्यजी के द्वारा वैष्णव धर्म फैलाया गया। इन आचार्यों ने शास्त्रीय दृष्टि से वैष्णव धर्म तथा भक्ति की प्रतिष्ठा की। इनके सिद्धान्तों को और भी मधुर रूप में जनता के सामने उपस्थित करने का काम देशी भाषा के कवियों ने प्रारम्भ किया। इन आचार्यों तथा कवियों के विषय में यह स्मरण रखना चाहिए कि न तो ये आचार्य कोरे पंडित मात्र थे न ये कवि कोरे कवि, ये सच्चे भक्त तथा सिद्ध थे तथा जनता बड़ी श्रद्धा और भरोसे से इनकी ओर बढ़ती थी। इस प्रकार दक्षिण की ओर जनता मुसलमानों के आने के पहले से आकृष्ट होने लगी थी और इसका प्रचार दक्षिण की ओर से प्रारम्भ हुआ था जहाँ मुसलमानों की पैठ भारत में आने पर भी शताब्दी तक नहीं हो पाई। ऐसी स्थिति में भक्ति

के उत्थान के साथ मुसलमानों के देश में आने के साथ कोई घनिष्ट तथा अनिवार्य सम्बन्ध जोड़ना युक्तियुक्त नहीं है। पर इतना अवश्य मानना चाहिए कि मुसलमानो के द्वारा फैलाये गये आतंक के द्वारा देश में जो उदासी छा गई थी वह भक्ति के प्रचार के अधिक अनुकूल पडी। हम चाहे तो इस दृष्टि से भी देख सकते है कि भक्ति के मधुर स्वरूप की ओर जनता इतनी उन्मुख हो चुकी थी कि सिर पर मुसलमानों की तलवारे चमकती रहने पर भी वह अपने राम और कृष्ण का मोह न छोड़ सकी। उस आँधी और पानी के काल मे भी कविगण अपनी मधुर तान सुनाते रहे और लोग मस्ती से सुनते रहे। इन भक्त लोगो के दो प्रधान सम्प्रदाय थे। कुछ रामावतार को लेकर आगे बढ़ते थे कुछ कृष्ण की ओर अधिक आकृष्ट थे। इस प्रकार रामोपासक तथा कृष्णोपासक ये दो विभाग भक्त कवियों के चले।

इन भक्तो के अतिरिक्त कुछ नवीन शैली के भक्त भी इस समय दिखाई पड़े। इनमे कबीर, जायसी, नानक, दादू आदि भक्तों का नाम लिया जा सकता है। इस प्रकार के भक्तो की जो बाढ़ आई उस पर बहुत कुछ मुसलमान धर्म का प्रभाव पड़ा। मुसलमानो के हिन्दुओ के बहुत आसपास बस जाने से कुछ नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थीं। यों तो हिन्दुओ को धार्मिक तथा दार्शनिक क्षेत्र में किसी से कुछ सीखना न था पर मुसलमानों की विजयों ने उनकी आँखो को कुछ चौंधिया अवश्य दिया। मुसलमान धर्म मे भी कुछ बातें अच्छी जँचने लगीं। मुसलमानों का एकेश्वरवाद का सिद्धान्त सबसे प्रभाव डालनेवाला प्रतीत

हुआ। भारतीय ब्रह्मवाद से इसका बहुत कुछ साम्य भी था। इसके अतिरिक्त मुसलमानों के भीतर फैले हुए समानता के व्यवहारवाले सिद्धान्त को भी साधारण तथा दलित जनता बडे उत्साह से देखने लगी। कुछ विचारशील लोगो को यह भी प्रतीत होने लगा कि दोनो धर्मों में जो विरोध दिखाई पड़ता था वह ब्रह्म या कर्मकांड के बाह्याडम्बर पर अवलम्बित था। इन सब विचारों से प्रभावित कुछ भक्त तथा प्रचारक उठ खड़े हुए, दोनो धर्मों के सर्वमान्य सिद्धान्तो को लेकर आगे बढ़े। इनका लक्ष्य व्यर्थ के विरोध को दूर कर धर्म के सच्चे सौन्दर्य की ओर जनता को ले जाना था। इन्होंने दर्शनशास्त्र की अनेक बाते हिन्दुओं से ली थीं तथा इनके अनेक सिद्धान्त मुसलमान धर्म की विधियों से प्रभावित थे। इन्होंने एक ओर तो हिन्दुओं की मूर्त्तिपूजा, बहुदेवोपासना, छुआछूत का खडन किया, दूसरी ओर मुसलमानो को उनकी पशुवध की प्रवृत्ति के लिये फटकारा। इनके दो सिद्धान्त ऐसे थे जो एक ओर मुसलमानो को अपनी ओर आकृष्ट करते थे दूसरी ओर हिन्दुओं की सहानुभूति को। ये थे एकेश्वरवाद तथा अहिंसा के सिद्धान्त। हिन्दुओं ने बौद्धों के सपर्क से अहिंसा के पाठ को इतनी अच्छी तरह याद कर लिया था कि वह अब भुलाया नही जा सकता था। इस सिद्धान्त को इन नवीन सुधारकों ने बड़ी पोढ़ाई से पकड़ लिया था।

इस प्रकार के कवियों का समूह निर्गुण धारा के नाम से प्रसिद्ध है। इस निर्गुण धारा के भीतर भी दो उपविभाग हैं—ज्ञाना-

श्रयी शाखा तथा प्रेममार्गी शाखा। कबीर, दादू, नानक आदि ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्तर्गत हैं, तथा जायसी आदि प्रेममार्गी शाखा के अन्तर्गत। यह प्रेममार्गी शाखा भी मुसलमान धर्म से प्रभावित है। इनका सम्प्रदाय सूफी के नाम से प्रसिद्ध है। ये उपासना के भीतर प्रेमपन्थ को माननेवाले हैं। ये ईश्वर को अपने प्रियतम के रूप मे देखते हैं तथा इनके निकट विश्व की गोचर विभूतियाँ उसी का छविजाल हैं। ये सम्पूर्ण विश्व में प्रियतम का वियोग व्याप्त पाते हैं। मुसलमान धर्म को मानते हुए भी सूफी कट्टरता से रहित तथा उदार होते हैं। इन लोगो ने कुछ प्रेमकहानियाँ लेकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। ये कहानियाँ भारतीय हैं तथा भारतीयता के रंग में रंगी हुई हैं। इन कहानियों के भीतर पारमार्थिक प्रेम की बड़ी सहज तथा मधुर व्यञ्जना की गई है।

निर्गुणधारा के इन कवियों पर भारत की प्राचीन परम्परा का बहुत प्रभाव पड़ा है। इन सबका हठयोग तथा धातुवाद की ओर झुकाव रहता था। योग की ओर यह झुकाव गोरख-पन्थियों के प्रभाव का फल है। कुछ लोगों ने कबीर की परम्परा को नाथों की परम्परा से मिलाने का प्रयत्न भी किया है। इस प्रयत्न में बहुत कुछ तथ्य है। बौद्धकाल के पतनकाल में जो पाखंडी साधु देश में विचरते फिरते थे वे प्राय धातुसिद्धि (कीमिया) का आत्म-विज्ञापन अवश्य करते थे। लौकिक विभव के पीछे पागल जनता को अपनी ओर बुलाने के लिये ये बातें बहुत काम की थीं। जायसी की पद्मावत कथा के नायक

रतनसेन भी कुछ दिन साधुता का दम भर कर धातुवाद की बहुत सी बातें बकने लगे थे। इन सन्त कवियों में हठयोग के कुछ शब्दों का जो प्रयोग मिलता है उसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि इन कवियों को इस विषय का कोई सच्चा ज्ञान प्राप्त था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी साधुता तथा सिद्धि दिखाने के लिये हठयोग के सुने सुनाये शब्दों का प्रयोग कर दिया जाता था। इनमें से प्राय. कविगण शास्त्रीय ज्ञान से कोरे हुआ करते थे। अपनी मूर्खता छिपाने के लिये ये पहले ही से शास्त्रों का खडन तथा पंडितों की उपेक्षा किया करते थे। पाडित्य की इस उपेक्षा का फल बहुत अच्छा नहीं हुआ। पांडित्य की उपेक्षा करनेवाले साधुओं की जो जमातें आजकल दिखाई पड़ती हैं वे कबीर आदि के वचनों का बहुत भरोसा करती देखी जाती हैं। साधारण जनता में आत्मसम्मान जगाने तथा ऊँची बातों की ओर दम्भ रूप में ही झुकाने का श्रेय इन सन्त कवियों को प्राप्त है।

निर्गुणधारा—ज्ञानाश्रयी शाखा

कबीरदास:—ये परम्परा से स्वामी रामानन्दजी के शिष्य तथा काशीनिवासी माने जाते हैं। इनका जन्मकाल सवत् १४५६ मे तथा निधन संवत् १५७५ मे माना जाता है। इनके जीवनवृत्त के विषय मे अभी बहुत नहीं जाना जा सका है। कहते हैं कि ये एक हिन्दू विधवा से उत्पन्न हुए थे तथा सन्ततिहीन एक मुसलमान घराने में इनका पोषण हुआ था। ये साधुओं में भक्ति रखनेवाले तथा पवित्र और सच्चा जीवन बितानेवाले एक गृहस्थ थे। करघा इनकी जीविका थी। साधुता के मिस टुकड़े कमाने की ओर ये कभी नही झुके। इनकी मृत्यु के समय की एक करामात बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं, हिन्दू तथा मुसलमान इनके शव के विषय में परस्पर बहुत लड़ने लगे; अन्त में जब चादर उठाकर देखा गया तो शव के स्थान में कुछ पुष्प मिले, जिन्हे दोनों ने आधा आधा बाँट लिया तथा अपने अपने धर्म के अनुसार इनकी अन्त्येष्टि की। इस कथा से कबीर के स्वभाव की इस विशेषता का पता चलता है कि इनकी दृष्टि में हिन्दू तथा मुसलमानो में कोई भेद नही था। इन्होंने देश के भिन्न भिन्न भागों में भ्रमण कर जनता को उपदेश दिया। इनकी भाषा का कोई स्वरूप नहीं; कुछ रचनाएँ प्राचीन ब्रजभाषा

में हैं, कुछ में खड़ी बोली का प्रारंभिक रूप दिखाई पड़ता है तथा कुछ रचनाओं पर पूर्वी तथा भोजपुरी तक का स्पष्ट प्रभाव है। इन्होंने प्रायः भाषाओं का मनमाना सम्मिश्रण भी किया है। इनकी रचनाओं की एक हस्तलिखित प्रति सवत् १५६१ की प्राप्त हुई है। इसकी भाषा पर पजाबी का भी बहुत प्रभाव है। इन सब बातों को देखकर इनकी भाषा के विषय में बहुत सन्देह उत्पन्न होता है। बहुत से परिवर्तन तो लोगों के द्वारा इतने काल से गाये जाने से तथा भिन्न भिन्न प्रान्तों के लिखनेवाले शिष्यों के प्रमाद से हुए। सिखों के धर्मग्रन्थ में भी कबीर की बहुत सी रचनाएँ संगृहीत हैं।

कबीर ने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को उनकी कट्टरता के लिये फटकार सुनाई। ऐसी कविताओं में इनकी वाणी कटु हो गई है। खडन करने में इनकी बुद्धि बहुत प्रखर थी। इस कार्य के लिये जितनी शैलियाँ इन्होंने निकालीं उनसे अधिक आज दिन तक इस भाँति के लोग नहीं निकाल सके हैं। स्वामी दयानन्दजी ने भी इस तरह का बहुत सा मसाला कबीरदासजी से ही उधार लिया। इस खडन से थोड़ी देर तक अलग रखकर जब कबीर की वाणी काव्य-पथ पर अग्रसर होती थी तो बहुत ही स्वाभाविक रचना के दर्शन होते थे। बड़े स्वाभाविक रूपको के द्वारा कबीर ने परोक्ष प्रेम की व्यजना की है। कुछ स्थानों पर इनकी रचना बहुत जटिल हो गई है। ऐसी रचनाओं को उल्टवासी कहते हैं।

धर्मदास :— ये बान्धवगढ़ के रहनेवाले एक संपन्न वैश्य

थे। ये कबीर से दीक्षा लेकर सन्त हो गये थे और इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दीन जनो को बॉट दी थी। कबीर के सत्यधाम प्राप्त करने पर इन्हे ही गद्दी मिली थी। इनकी रचना प्राय: पूर्वी भाषा मे है। कबीर की रचनाओं में एक आँधी सी मिलती है तथा इनकी रचनाओं मे आँधी उड़ जाने के पश्चात् की शान्ति।

गुरु नानकदेवजी :— (स० १५२६ से १५९६ तक)-ये पंजाब के सन्त हो गये हैं जिनसे सिख धर्म का प्रारंभ होता है। ये अत्यन्त सरल प्रकृति के निर्भीक महात्मा थे। इनकी रचनाएँ ग्रंथसाहब में संगृहीत हैं। कुछ रचनाएँ पंजाबी से प्रभावित हैं तथा कुछ व्रजभाषा में हैं। इनकी रचनाओं के वही विषय हैं जो कबीर की रचनाओ के हैं। इनकी वाणी कबीर की वाणी की अपेक्षा अधिक सौम्य है पर उसमें उतने ऊँचे कवित्व के भी दर्शन नहीं होते।

दादूदयाल :—(स० १६०१ से १६६० तक)-इनका जन्म गुजरात में हुआ था। इन्होंने प्राय' अपने उपदेश पछाँह ही में दिये। इनकी भाषा पर राजपूताने की भाषा का बहुत प्रभाव है। इनकी वाणी में एक सच्चे सन्त की वेदना अनुभव की जा सकती है। इन्होंने अपने को खंडन-मंडन से अलग रखा। इनके अनुयायी दादूपन्थी कहलाते हैं। इनका प्रधान पीठ जयपुर के अन्तर्गत तराना नामक स्थान माना जाता है। ये कबीरपन्थियों से बहुत कुछ मिलते हैं। इनकी रचनाओं के विषय भी वही हैं जो कबीर की रचनाओं के हैं।

सुन्दरदास :—ये जयपुर राज्य के अन्तर्गत द्यौसा नामक स्थान में संवत् १६५३ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने लड़कपन ही में दादूदयाल से सन्तमत की दीक्षा ले ली थी। इसके बाद काशी जाकर इन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया। इस अध्ययन का फल इनकी रचनाओं पर भी पड़ा। ब्रह्म, माया आदि का जो विवेचन इन्होंने किया है उसमें शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इनकी भाषा परिमार्जित है तथा काव्य के गुणों से भूषित है। इन सन्तों के बीच में केवल इन्हीं की भाषा को साहित्यिक कहा जा सकता है।

मलूकदास :—ये भी एक सम्प्रदाय के चलानेवाले हैं। इनकी गद्दियाँ काबुल तक में स्थापित हुईं। इनके उपदेशों का संग्रह 'रत्नखान' और 'ज्ञानबोध' नामक पुस्तकों में है। इनकी भाषा कबीर की भाषा की भाँति अव्यवस्थित नहीं है। इन्होंने खड़ी बोली में भी कुछ रचनाएँ की हैं। इनका जन्म सं० १६३१ में एक खत्री कुटुम्ब में हुआ था।

निर्गुणधारा—प्रेममार्गी शाखा

इन कवियों का भी एक धार्मिक उपदेश था इनमें से प्रायः सूफी धर्म के वेदान्त से प्रभावित थे । इनकी दृष्टि में मनुष्य मनुष्य में ऐसा कोई भेद नहीं था । पार्थक्य तो मनुष्य ने स्वय उत्पन्न किया है । इन्होंने कुछ कहानियों के द्वारा अपनी भावनाओं का प्रचार किया । इन कहानियों में किसी न किसी प्रेमकथा को सुनाया गया है जिसके द्वारा पारमार्थिक प्रेम की व्यञ्जना की गई है । जो काम कबीरदास ने डॉट और फटकार से करना चाहा वही इन कवियों ने मनुष्य के हृदय को स्पर्श करके पूरा किया ।

कुतबन :—इनका समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी माना जाता है । ये शेरशाह के पिता के यहाँ रहते थे । इन्होंने 'मृगावती' नाम की एक कहानी लिखी है । इस कहानी मे हिन्दू-दाम्पत्य जीवन का बहुत ही सुन्दर चित्र अंकित हुआ है । राजकुमार के मर जाने पर उसकी रानियों के सती होने का दृश्य बहुत ही मार्मिक हुआ है ।

मंझन :—इनका जीवनवृत्त अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है । इनकी लिखी हुई 'मधु-मालती' नामक पुस्तक प्राप्त हुई है जो अपूर्ण है ।

इसमें इन्होंने दोहे, चौपाइयों का क्रम रखा है। यही क्रम कुतुवन तथा जायसी आदि कवियों का भी है। इस कहानी के भीतर भी एक प्रेमकथा वर्णित है।

मलिक मुहम्मद जायसी: — ये शेरशाह के समय वर्तमान थे। इनका निवासस्थान अमेठी राज्य के अन्तर्गत जायस नाम का स्थान माना जाता है। इसी से इनकी यह उपाधि है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक पद्मावत है। दो छोटी छोटी पुस्तकें और हैं। पद्मावत में इतिहास में प्रसिद्ध रानी पद्मिनी की कथा गाई गई है। मुसलमान होते हुए भी कवि ने हिन्दू-जीवन का बहुत ही सहानुभूति से वर्णन किया है। ग्रन्थ में कहीं पता ही नहीं चलता कि कवि मुसलमान है। राजपूतों की वीरता पर कवि का उदार हृदय उसी उदारता से मुग्ध हुआ है जिससे किसी भी हिन्दू का हो सकता है। पद्मावत का पूर्वार्द्ध कल्पित है। उत्तरार्द्ध इतिहास पर आश्रित है। कवि ने इतिहास का आश्रय नाममात्र को ही ग्रहण किया है। ग्रन्थ में हिन्दुओं का पूरी गौरव-रक्षा की गई है। यहाँ तक कि अन्त में राजा रतन-सिंह की मृत्यु मुसलमानों के द्वारा न दिखाकर एक हिन्दू राजा से लड़ते समय दिखाई है। यही सहानुभूति ग्रन्थ की बड़ी विशेषता है। पूर्वार्द्ध पर अवध प्रान्त में प्रचलित 'रानी पद्मिनी और हीरामन सुग्गा' की कहानी का प्रभाव पड़ा है। अन्त में कवि ने लिख दिया है कि यह सम्पूर्ण कथा एक रूपक मात्र है। पद्मिनी परम प्रिय है और हीरामन मार्गप्रदर्शक गुरु; रतनसिंह साधक के रूप में उपस्थित होता है।

ग्रन्थ के बीच बीच में कवि ने उस व्यापक वियोग की ओर संकेत किए हैं जिनका प्रभाव सम्पूर्ण सृष्टि पर दृष्टिगोचर होता है। कवि ने प्रदर्शन की रुचि से प्रेरित होकर कुछ वर्णनों को आवश्यक विस्तार दे दिया है। हठयोग आदि की बातें तो व्यर्थ ही ठूसी हुई प्रतीत होती है। ग्रन्थ मे शृंगार, वीर, करुण आदि अनेक रसों की व्यंजना हुई है। ग्रन्थ का अवसान शान्त रस में होता है।

उसमान :—ये जहाँगीर के समय में वर्तमान थे। इन्होंने 'चित्रावली' नामक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक मे जायसी का पूरा अनुकरण किया गया है। इस प्रकार के कहानी-लेखकों की परम्परा बहुत पीछे तक चलती रही। सत्रहवीं शताब्दी में शेख नबी ने 'ज्ञानदीप' नाम की कहानी सुनाई। इस शाखा के अन्तर्गत और भी अनेक कवि हुए हैं।

———

सगुणधारा-रामभक्ति शाखा

गोस्वामी तुलसीदास :— आर्यसाधकों ने अपने आदर्शों की पूर्णता राम के चरित्र में देखी। इस आदर्श की प्रतिष्ठा बहुत प्राचीन काल में हो चुकी थी। सबसे पहले आदिकवि की वाणी ने इस चरित्र का वर्णन किया। फिर तो उसे बार बार सुनने को हम सदा उत्कर्ण रहे। कोई न कोई गायक उस प्रिय गीत को गाकर सुनाता रहा। हमारे इसी आदर्श की निधि को उस विपत्ति काल में हमारे हाथों में सौंपकर तुलसी ने हमें डूबते से बचा लिया। तुलसी की सबसे बड़ी सेवा यही है कि इसने हमे अपने आर्य आदर्शों के केन्द्र से च्युत नहीं होने दिया।

छोटे बड़े बारह ग्रन्थों में कवि ने वही कथा बार बार सुनाई है। न वह कहते ऊबा, न हम सुनते। रामायण हमारे साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इसका प्रचार सम्पूर्ण उत्तरापथ में है। इस समय इसका प्रयोग धर्मपुस्तक के समान ही किया जाता है। गीतावली, कवितावली आदि ग्रन्थों में भी रामकथा वर्णित है। विनय-पत्रिका में कवि ने अपनी एकान्त विनय अपने प्रभु को सुनाई है। तुलसी केवल कवि नहीं थे, साधक भी थे। उनमें केवल कौशल ही नहीं था, सिद्धि भी थी। उनकी वाणी काव्य का आनन्द लेने के लिए ही नहीं पढ़ी जाती, अपना निस्तार करने को, पापों से मुक्ति पाने के लिए भी पढ़ी जाती है।

तुलसीदास जी का उस समय की दोनों प्रधान साहित्यिक भाषाओं पर पूरा अधिकार था। कवितावली, गीतावली आदि पुस्तकें साहित्यिक व्रजभाषा में लिखी गई हैं। जानकी-मंगल तथा पार्वती-मंगल अवधी भाषा में। रामायण का ढाँचा तो अवधी का है पर उस पर व्रजभाषा की पूरी छाप पडी है। छन्दों में तो कवि ने व्रजभाषा ही रखी है। उस समय की जितनी प्रधान साहित्यिक शैलियाँ थी उन सब पर कवि का अधिकार था। अलंकारों का इतना कुशल और सिद्ध प्रयोग बहुत कम कवि कर पाए होंगे। इनकी भाषा भी पूर्णता को पहुँची हुई है। उसमें सूरदास की भाषा का सा शैथिल्य नहीं मिलता। सूर की भाषा चाहे कहीं अधिक मीठी हो गई हो पर उसमें वह प्रांजलता नही मिलती जो तुलसी की भाषा में प्राप्त है।

तुलसी के जीवन-चरित्र के विषय में हम अब तक प्रामाणिक रूप में कुछ नहीं कह सकते। किंवदन्तियों के द्वारा जो कुछ सुना गया है उस पर अधिक भरोसा नही किया जा सकता। ये अपने जीवन के अधिक भाग में साधु के रूप ही में रहे। गार्हस्थ्य-जीवन का उपभोग इन्होंने बहुत दिनों तक नहीं किया। काशी इनका प्रिय स्थान था। इनका सामाजिक महत्त्व इसी से जाना जा सकता है कि इनके मित्रों में रहीम और महाराज मानसिंह ऐसे लोग भी थे। काशी में टोडर नाम के एक जमींदार से इनका बड़ा प्रेम था। ये कौन ब्राह्मण थे इस विषय में भी अभी विवाद ही चल रहा है। क्या यह सम्भव

नहीं है कि ये गोसाईं ही रहे हों। इन्होंने रामायण का प्रारम्भ सं० १६३१ में किया था।

स्वामी अग्रदास:—ये वल्लभाचार्य की शिष्य-परम्परा में हैं पर कृष्णोपासक न होकर ये रामोपासक थे इनकी बनाई हुई चार पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। हितोपदेश, उपखाणाँ बावनी, ध्यान-मजरी, रामध्यान-मजरी और कुंडलिया।

नाभादासजी:—ये सत्रहवी शताब्दी के मध्य में वर्तमान थे। ये अग्रदास जी के शिष्य माने जाते हैं। इनके वर्ण का ठीक ठीक पता नहीं चला है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ भक्तमाल है जिसमें इन्होंने अनेक भक्तों के वृत्त को बड़ी श्रद्धा से सुनाया है।

प्राणचन्द् चौहान:—इन्होंने सवत् १६६७ में रामायण महानाटक लिखा। इसका नाटकत्व केवल बीच बीच में आये हुए संवादों में है—किसी को यह न समझना चाहिए कि यह साहित्यिक नाटकों के नियमों के अनुसार लिखा गया होगा।

हृदयराम:—इन्होंने स० १६८० मे हनुमन्नाटक लिखा। यह संस्कृत के इसी नाटक के आधार पर लिखा गया है। इस ग्रन्थ की बहुत प्रसिद्धि है। रामलीलाओं में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। रामभक्ति की यह परम्परा बहुत दिनों तक चलती रही। रीतिकाल में भी राम का गुण गाने वाले कवि दिखलाई पड़ जाते थे। इस काल में भी रामचरित-चिन्तामणि, साकेत आदि ग्रन्थों में रामकथा वर्णित हुई है।

सगुणधारा-कृष्णभक्ति शाखा

आर्यधर्म-पुनरुत्थान के समय भक्ति की जो धारा प्रवाहित हुई उसमे भगवान के राम और कृष्ण रूपों को लोगों ने बड़े उत्साह से अपनाया। इन दोनों में भी कृष्ण अधिक आकर्षक प्रतीत हुए। जनता कृष्ण की मुरली की तान पर जितना मुग्ध हुई उतना राम के धनुष-बाण पर नहीं। कृष्ण का चरित्र बहुत ही व्यापक है पर भक्तों को वे गोपियो के सहचर के रूप मे अधिक प्रिय प्रतीत हुए। वल्लभाचार्य आदि आचार्यों ने भी कृष्णस्वरूप को ही सामने रखा। इन आचार्य जी ने ब्रजमंडल में अपने उपदेशों का केन्द्र बनाया। इनके प्रभाव से कृष्णचरित्र गानेवाले अनेक कवि उत्पन्न हुए। इस समय कृष्णगीतो की जो परम्परा चली वह अब तक चली जा रही है। रीतिकाल के भी प्रायः कवियों ने कृष्ण ही का आश्रय ग्रहण किया। इन कवियों ने कृष्ण को सदाचार की दृष्टि से कुछ बहुत अच्छे रूप में उपस्थित नहीं किया। इनके कृष्ण गीतगोविन्द के कृष्ण हैं, महाभारत के कृष्ण नहीं। कृष्णगीत गानेवालों मे इस समय आठ प्रधान कवि हुए। उनके नाम ये हैं—सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास। इनमें सूरदास ही की सबसे अधिक ख्याति है।

सूरदासजी :— इनका समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी माना जाता है। ठीक ठीक कालनिर्णय नहीं किया जा सकता। इनका जीवनवृत्त ज्ञात नही है। यहाँ तक कि इसका भी पता नहीं है कि यह किस वर्ण के थे। कुछ लोगों ने इन्हे चन्द वरदाई के वंश में माना है। ये जन्मान्ध थे अथवा किसी घटना विशेष की प्रेरणा से अन्धे हो गये थे, इस विषय मे भी हम अन्धकार मे हैं। इनकी रचनाओ का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि इतनी सूझ-बूझ का आदमी जन्म से अन्धा तो न रहा होगा। जीवन के विषय में अपरिचित रहते हुए भी हम इस कवि के मानस-जीवन से पूर्ण परिचित हैं। सूर की रचनाओं के अधार पर यह सरलता से कहा जा सकता है कि उनका मानस भक्ति की तरल भावनाओं से आर्द्र था। इनकी रचनाओं का सग्रह सूरसागर नामक ग्रन्थ में है। इस समय तक जो पद प्राप्त हुए हैं उनकी सख्या दश सहस्र से अधिक नहीं है। बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने सूरसागर का सम्पादन किया था। काशी से अब यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। सूरसागर को भागवत का अनुवाद कहा जा सकता है। कथाओं के विस्तार में परिवर्तन कर दिये गये हैं। कृष्ण की शैशव क्रीड़ा तथा यौवन-क्रीडाओं को अधिक विस्तार दिया गया है। वात्सल्य रस का जैसा चित्रण सूरसागर में मिला है वैसा हिन्दी-साहित्य में और कहीं नहीं मिलता। गोपाल केवल नन्द तथा यशोदा का ही बालक नहीं था, उसकी क्रीड़ाओं का क्षेत्र सारा व्रजमडल था। बाल-क्रीड़ाओं के पश्चात् यौवन-क्रीड़ाएँ-

प्रारम्भ हुई। इनका भी सरस कवि ने बड़ी सरसता से वर्णन किया है। यमुना तट पर चैत्र की चाँदनी रात्रियों में होनेवाली न जाने कितनी चाहभरी क्रीड़ाओं को अपनी बन्द आँखों से देखा। इस ग्रन्थ की भाषा ब्रजभाषा है। इसमें सूर ने ब्रजभाषा के साहित्यिक स्वरूप को अपनाया है। प्राचीन हिन्दी के तथा अन्य प्रान्तों के भी कुछ प्रयोग इसमें आ गये हैं। महाविरो और कहावतो का अच्छा प्रयोग किया गया है। भाषा बहुत ही स्वाभाविक हुई है। इस कवि को हमारे साहित्य में एक बहुत ही महत्त्व का स्थान प्राप्त है। जनता की सम्मति की प्रतिध्वनि इन शब्दों मे सुनी जा सकती है:—

सूर सूर, तुलसी ससो, उडुगन केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥

नन्ददास:—इनकी गणना अष्टछाप में है। कुछ लोग इन्हे वैष्णवों की वार्ता के अनुसार तुलसीदास का भाई मानते हैं। गोस्वामी विट्ठलनाथ इनके दीक्षागुरु थे। सूरदास के पश्चात् अष्टछाप में इनकी प्रधानता है। इनकी कविताओं की आलोचना लोकरुचि ने इन शब्दों में की है—"और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया"। इनकी अनेक पुस्तकों का उल्लेख होता है। पर अभी तक रासपंचाध्यायी, भ्रमरगीत, अनेकार्थनाममाला ही देखने में आई हैं। इनके विषय वे ही हैं जो सूरदास के हैं। इनकी भाषा सूर की भाषा से अधिक सुथरी और प्रवाहपूर्ण है। इन्होंने ब्रजभाषा के प्रचलित प्रान्तीय रूप ही को ग्रहण किया है। भ्रमरगीत एक छोटी सी गाने योग्य पुस्तक है।

कृष्णदास:—परम्परा से यह प्रसिद्ध है कि ये शूद्र वंश के थे, पर अपने गुरु वल्लभाचार्यजी के कृपा[illegible] होने के कारण सम्मानित हुए। इनके बनाये तीन ग्रन्थ [illegible] हैं। भ्रमरगीत, युगलमान-चरित्र तथा प्रेमतत्त्व-नि[illegible]। सूरदास के सामने इनकी कविता साधारण कोटि की हुई है।

परमानन्ददास:—ये कृष्णदास के गुरुभाई थे। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण माने जाते हैं। इनकी रचनाओं में [illegible] लगन प्रतीत होती है। इनकी कविताओं को हम संग्रह-ग्रन्थों में पाते हैं।

कुम्भनदास:—ये निर्भीक प्रकृति के कृष्णोपासक कवि थे। कहते हैं एक बार अकबर ने इन्हे अपने यहाँ बुलाया। उस समय इन्होने जो पद कहा उससे इनकी प्रकृति का पूरा परिचय मिलता है—

> "संतन को कहा सीकरी सों काम ?
> आवत जात पनहियाँ टूटीं, बिसरि गयो हरि-नाम॥"

इनकी रचनाओं में सच्चे भक्तों की सी तल्लीनता प्राप्त होती है।

चतुर्भुजदास, छीतस्वामी तथा गोविन्दस्वामी की रचनाएँ भी इसी परिपाटी के भीतर आती हैं। छीतस्वामी की रचनाओं में व्रजभूमि के प्रति अनुराग प्रकट किया गया है। गोविन्दस्वामी सुकवि होने के साथ साथ सुगायक भी थे।

हित हरिवंश:—इनका जन्म सं० १५५९ में माना जाता है ये राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य माने जाते हैं।

कहते हैं कि श्रीराधिका जी ही ने स्वप्न में इन्हे इस सम्प्रदाय की स्थापना करने को प्रेरित किया था। आपके केवल चौरासी पद प्राप्त हुए हैं जो हित-चौरासी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पदों का हिन्दी के गीतकाव्य के भीतर महत्त्व का स्थान है। आपकी रचना प्रचुर परिमाण मे नही मिलती; पर जो कुछ मिली है वह बहुत ही सरल और सुन्दर है।

गदाधर भट्ट:—परम्परा से यह प्रसिद्ध है कि ये श्री चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। इन्होंने उन्हीं प्रभु से दीक्षा ली। ये सस्कृत के उच्च कोटि के पडित थे। इस पांडित्य का प्रभाव इनकी भाषा पर भी पडा है।

मीराबाई:— ये जोधपुर बसानेवाले जोधाजी राव की पोती थी। इनका जन्म समय अभी तक निश्चित नहीं किया जा सका है। इनके जीवनवृत्त के विषय में भी अनेक मत हैं। भक्ति में तल्लीन रहने के कारण ये परदा ऐसे समाज के साधारण बन्धनों की उपेक्षा कर दिया करती थीं। इससे इनके कुटुम्बियों को बहुत असन्तोष था। इन्हे विष देने तक का प्रयत्न किया गया। अपने प्रभु की कृपा से यह सब विपत्तियों से पार पाती रहीं। इनकी रचनाओं का भक्तों में बड़ा आदर है। भाषा राजपूताने के प्रान्तीय प्रयोगो से आक्रान्त है। इनकी गणना पहुँचे हुए भक्तों में की जाती है। यह कृष्ण को प्रियतम के रूप मे देखती थीं।

स्वामी हरिदास:—इनका कविताकाल विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ है। ये टट्टी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे।

कहते हैं एक बार अकबर भी वेश बदलकर इनकी रचनाएँ सुनने आया था। इन्होंने अपने पद्यो की रचना राग-रागिनियों की जटिलता को दृष्टि में रख कर की है।

अन्य कृष्णभक्त कवि:—श्री भट्ट जी की रचनाएँ अधिक मात्रा में नहीं मिलतीं। इनकी रचनाओं में बड़ी तल्लीनता प्राप्त होती है। व्यासजी की भी वहुत सी रचनाएँ प्राप्त हैं। ये वृन्दावन में रह कर भगवान का भजन किया करते थे। इनके वहुत से पद मिले हैं। ध्रुवदास हित हरिवंश के शिष्य माने जाते हैं। इनकी रचनाएँ भी वहुत सी हैं। इनकी पुस्तकों की सख्या तो ४० तक बताई जाती है।

रसखान:— इनके जीवनवृत्त के विषय में कोई सर्वसम्मत मत नहीं दिया जा सकता। ये जन्म से मुसलमान थे और किसी महत्त्वप्राप्त मुसलमानी कुटुम्ब से थे। इनकी एक पक्ति से इसका भी सकेत मिलता है कि ये पठानी राजवश से थे:— "छिनहिं वादशा वश की ठसक छॉड़ि रसखान"। ये अपने यौवन काल में एक प्रेमी जीव थे। कहते हैं इसी लौकिक प्रेम ने इन्हें भगवान की ओर उन्मुख किया। इनमें सच्चे भक्त की सी तल्लीनता तथा सरसता प्राप्त होती है। उन्होंने व्रजभूमि तथा व्रजपति के लिये वहुत अनुराग प्रकट किया है। इनकी भाषा चलती हुई तथा सिद्ध है। इनकी प्रेमवाटिका तथा सुजान-रसखान नामक दो पुस्तकें ही प्राप्त हुई हैं।

कृष्णभक्ति की यह परम्परा अव तक चल रही है। हम तो

यहाँ तक कह सकते हैं कि हमारा प्राचीन साहित्य कृष्ण की ओर ही लगा रहा। आधुनिक काल में भी इसका क्रम चल रहा है। हरिऔध जी ने प्रियप्रवास लिखकर इसी क्रम को आगे बढ़ाया है।

भक्तिकाल की फुटकल रचनाएँ

कृपाराम :— इन्होंने १५९८ में हिततरंगिणी नामक ग्रन्थ दोहों में बनाया। इसमें रसों इत्यादि पर विचार किया गया है। काव्य-रीति पर यह सबसे पहला ग्रंथ माना जाता है। कृपाराम ने अपने ग्रन्थ में इस बात का संकेत दिया है कि उनसे पहले भी काव्य-रीति पर लिखने वाले कवि हो चुके थे; पर उनकी रचनाएँ हमें प्राप्त नहीं हैं।

नरोत्तमदास :— इनका जन्मकाल स० १६०२ में माना जाता है। ये सीतापुर के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका 'सुदामा-चरित्र' बहुत ही प्रसिद्ध है। यह ग्रथ अपने प्रान्त में घर घर मिलता है। इसके दो एक सवैये तो प्रत्येक काव्य-रसिक को याद रहते हैं। इसमें सुदामा की दीनता तथा कृष्ण की भक्तवत्सलता के अच्छे चित्र अकित किये गये हैं।

गंग :— इनका कोई ग्रथ प्राप्त नहीं हुआ है। पर "तुलसी गग दुऔ भये सुकविन के सरदार" से ऐसा सन्देह होता है कि इनकी रचनाएं किसी समय अवश्य प्रचलित रही होंगी। किसी अपराध के कारण ये हाथी से कुचलवा दिये गये थे। इस घटना का उल्लेख प्राचीन जनश्रुति करती आई है। संग्रह-ग्रंथो में इनकी कविताएँ प्राप्त होती हैं।

इनका रचनाकाल विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का मध्यकाल माना जाता है।

बलभद्र मिश्र:— ये केशवदास जी के बड़े भाई थे। इनका 'नखशिख' नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इनकी भाषा केशवदास की भाषा से अधिक प्रवाहपूर्ण है। यह ग्रन्थ नायिकाओं के अंगों पर लिखा गया है। इनके अन्य ग्रन्थों के भी नाम लिये जाते हैं जो प्राप्त नहीं हैं।

केशवदास:— ये ओरछा-नरेश रामसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह की सभा में रहा करते थे। इन्होंने संस्कृत के पण्डित होते हुए भी ब्रजभाषा को अपनाया। इनका जन्म सं० १६१८ के आसपास हुआ। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचन्द्रिका' है। इसमें प्रबन्ध-निर्वाह का उतना ध्यान नहीं रखा गया है। कवि को आलंकारिक युक्तियों का बहुत आग्रह है। सवाद बहुत ही अच्छे बन पड़े हैं। इस ग्रन्थ पर हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव आदि ग्रंथों का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है। अपने 'कवि-प्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' ग्रन्थों की रचना काव्य-रीति को लक्ष्य में रख कर की है। कविप्रिया में दण्डी-सम्प्रदाय के अनुसार अलंकारों की विशद व्याख्या की गई है। पर गद्य का आश्रय ग्रहण न करने के कारण परिभाषाओं में अपूर्णता तथा अस्पष्टता रह गई है। रसिकप्रिया नायिका-भेद का ग्रन्थ है। केशवदास की रचना प्रायः क्लिष्ट मानी जाती है। ये क्लिष्ट काव्य के प्रेत तक कहे गये हैं। विज्ञानगीता, वीरसिंह देवचरित, रतनबावनी तथा जहाँगीर-यश-चन्द्रिका इनके अन्य ग्रन्थ हैं। यद्यपि

ये अपने ग्रन्थों में काव्य-रीति का सफलतापूर्वक वर्णन करने में सफल नहीं हुए हैं तथापि इस मार्ग को चलाने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है।

रहीम :— ये बैरम खॉ के पुत्र थे। इनका जन्मकाल स० १६०० के आसपास माना जाता है। मुसलमान होते हुए भी ये सस्कृत-साहित्य तथा भारतीय काव्य-परम्परा से अच्छी तरह परिचित थे। ये मुक्त हस्त से दान किया करते थे। जब राज्य कोप के कारण इनकी स्थिति ठीक नहीं रही तब भी याचक इनके पीछे पड़े रहते थे। रहीम की प्रायः रचनाएॅ लोकनीति तथा व्यवहार से सम्बन्ध रखने वाली हैं। कवि ने इन विषयों को काव्य की ऊँची भूमि तक ले जाने का प्रयत्न किया है। अपनी बहुत सी सूक्तियों में इन्होंने सस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध सूक्तियों के अनुवाद ही किये हैं। बहुत सी सूक्तियॉ इनके जीवन के अनुभवों से पोषित हैं। इनका ब्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं पर अधिकार था। श्री मायाशंकर याज्ञिक ने रहीम का एक सग्रह "रहीम-रत्नावली" नाम से निकाला है। एक आध सग्रह ग्रथ और भी निकल चुके हैं। इनकी उक्तियॉ प्रायः लोगों के द्वारा सुनी जाती हैं।

बनारसीदास :— यह जौनपुर के रहने वाले एक जैनी जौहरी थे। इन्होंने अपना जीवन-चरित्र स्वय लिखा है। उसमें खड़ी बोली के भी कुछ उदाहरण मिल सकते हैं जैसे "बेटा सुनो बड़ो की सीख, बहुत पढ़े सो माँगे भीख"। यह जीवन-चरित्र हमारे साहित्य में पहला जीवन-चरित्र है। इसमें कवि

ने बड़े विस्तार से अपनी जीवन-गाथा गाई है। बीच में हास्य तथा विनोद का पुट दिया गया है। इन्होंने जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन हिन्दी में किया है। इनके ये ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—बनारसी-विलास, नाटक समयसार, अर्ध कथानक, वेदनिर्णय पंचासिका। इनकी रचनाएँ वैराग्यप्रधान हैं।

सेनापति:—ये अनूप शहर के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म १६४६ में हुआ था। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ कवित्त-रत्नाकर है, जो बहुत प्रचलित है। इसमें अनेक विषयों पर रचनाएँ मिलती हैं। यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। यह कवि अपने ऋतु-वर्णन के कारण प्रसिद्ध है। इन्होने अपने विषय में लिखा है।

'सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई हैं'।

इनकी कविता सरस तथा प्रवाहपूर्ण है। ये राम के उपासक थे। भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था।

रीतिकाल

(सं० १७००–१९००)

भक्तिकाल की प्रवृत्तियों का विवेचन करते समय प्रसंगानुसार यह भी कहा जा चुका है कि कुछ कवियों ने लक्षण-ग्रन्थों के निर्माण की ओर भी ध्यान दिया था। कृपाराम का उल्लेख बहुत पहले किया जा चुका है। इन्होंने स० १५९८ में हित-तरंगिणी नामक लक्षण-ग्रन्थ की रचना की। स० १६१५ के आसपास गोप कवि ने इस क्षेत्र में कुछ काम किया था। सत्रहवीं शताब्दी में केशवदास जी ने लक्षण-ग्रन्थों की रचना की। केशवदास जी ऐसे साहित्य के मार्गप्रदर्शक कहे जा सकते हैं। पर रीति-ग्रंथों का अटूट क्रम केशवदास के पचास वर्ष पश्चात् प्रारम्भ होता है। स० १७०० के आसपास चिन्तामणि त्रिपाठी के काव्यविवेक, कविकुलकल्पतरु और काव्यप्रकाश ग्रंथों की रचना से इस काल का प्रारम्भ होता है।

लक्ष्य-ग्रंथों के पश्चात लक्षण-ग्रंथों का युग आता है। आचार्यगण अपने साहित्य की विशेषताओं को परख कर लक्षण बनाया करते हैं जिनके द्वारा सदसत् काव्य का विवेचन किया जा सके तथा आगे आने वाले कवियों की सहायता के लिये कुछ सामग्री प्रस्तुत हो सके। पर हिन्दी में न तो इसकी आवश्यकता पड़ी और न कवियों को इतने दिनों तक ठहरना पड़ा। हिन्दी-साहित्य को स्वतंत्र रूप से विकसित होने का

कभी अवसर ही नहीं मिला। संस्कृत के उच्च साहित्य से यह सदा प्रभावित होता आया है। यह अच्छा भी हुआ और बुरा भी। बिना परिश्रम के संस्कृत-साहित्य का खुला खजाना हिन्दीवालों के हाथ लग गया। फिर वे परिश्रम क्यों करते। सब कुछ उधार लेने की प्रवृत्ति ने स्वतत्र उद्भावना को बहुत कुछ कुत्सित कर दिया है। यही अवस्था रीति-ग्रन्थों की रचनाओं में हुई। संस्कृत के आचार्यों की रस, अलंकार आदि विषयों की पुस्तकें हिन्दी वालों के सामने थीं। इन्हीं के आधार पर हिन्दी-कवियों ने ग्रन्थ बनाए। इन पुस्तकों के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि रसों एवम् अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करना इन कवियों का लक्ष्य ही न था। लक्षण प्रायः अपूर्ण तथा अस्पष्ट होते थे। लक्षणों और उदाहरणों का पूर्ण समन्वय नहीं हो पाता था। कुछ कवियों में मूल संस्कृत-ग्रन्थों के भावों के समझने की क्षमता भी न थी। ऐसों में केशवदास ऐसे पण्डित भी हैं। इनकी कविप्रिया के देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने दण्डी के भावों को भली भाँति नहीं समझा था। अलंकारों का तत्व वास्तव में किस प्रकार की उक्ति में है यह बहुत कम लोगों ने समझ पाया। प्रधान अलंकारों का तात्पर्य व्यंजना में होता है। यह संभव है कि सब प्रकार की कवायद पूरी कर देने पर भी अभिप्रेत अलकार की प्रतिष्ठा न हो सके। इस प्रकार के भ्रमों से वे ही सिद्धहस्त विद्वान् बच सकते हैं जिन्होंने अलंकृत उक्तियों तथा भावव्यंजना के पारस्परिक सम्बन्ध के महत्व को समझ लिया है। रीतिकाल

के बहुत से कवियों के उदाहरणों मे अनिवार्य रूप से आवश्यक उस व्यंजना की स्थापना न होने पाई जो अप्रस्तुत-विधान की सांकेतिकता का केवल महत्त्व ही का अङ्ग नहीं है, वास्तव मे उसकी प्राणशक्ति है जिसके बिना अलंकारोपकरण उपकरण न रहकर भारस्वरूप हो जाते हैं। सस्कृत में रसों और अलंकारों के अनेक संप्रदाय प्रचलित हैं। इन सम्प्रदायों के मतों के पार्थक्य का आधार सूक्ष्म तात्त्विक विवेचन है। हिन्दी-कवियों ने इन सब बातो पर कभी ध्यान नहीं दिया। सस्कृत के प्राय' तोन आचार्यों से हिन्दी कवि अधिक प्रभावित हुए हैं। ये मम्मट, दण्डी तथा जयदेव हैं। कुलपति मिश्र ने अपना रस-रहस्य ग्रथ मम्मट के काव्यप्रकाश के आधार पर बनाया था। केशवदास ने कवि-प्रिया की रचना दण्डी के आधार पर की है। महाराज जसवन्तसिंह ने अपने भाषाभूषण की रचना चन्द्रा-लोक के आधार पर की। चन्द्रालोक वाला सम्प्रदाय हिन्दी में अधिक चला। जयदेव का रीति-ग्रंथों के भीतर कोई पृथक् सम्प्रदाय तो मानना उचित न होगा, क्योंकि ये मम्मट आदि आचार्यों के समान ही काव्य में रसों के महत्त्व को मानने वाले थे। इस विषय की जो पुस्तकें हिन्दी में बनीं उनका भी कुछ परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए। इन पुस्तकों में रस का काव्य से क्या सम्बन्ध है, भाव तथा रस परस्पर क्या सम्बन्ध रखते हैं, भावाभास, रसाभास इत्यादि क्या हैं, इन विषयों का विवेचन ही नहीं हुआ। रसो की स्थापना काव्य में किस प्रकार होती है, व्यंजनाशक्ति में इससे कहाँ तक सहायता मिलती है

आदि विचारणीय विषयों को छोड़ ही दिया गया। विभाव, अनुभाव और संचारियों का रसनिष्पत्ति में कहाँ तक सम्बन्ध है; रस की स्थापना पाठक, कवि, श्रोता, अभिनेता में से किसमें होती है— आदि महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन नहीं हुआ। रसों में भी शृङ्गार रस के अतिरिक्त अन्य रसों को या तो छोड़ ही दिया गया या यों ही चलता कर दिया गया। सयोग शृंगार, विप्रलम्भ, नायक-नायिकाभेद, दूतीकर्म, दर्शन, व्यभिचारी, मान, मानमोचन, सखीकर्म आदि का वर्णन बड़े विस्तार से हुआ है। रसों के भीतर बहुत सी कामशास्त्र की बातों का भी समावेश कर दिया गया है। वास्तव मे यह ग्रंथ नायिका-भेद के ग्रन्थ हैं। कवियो ने शब्दशक्ति पर तो कुछ विचार ही नहीं किया। भिखारीदास ने शब्दशक्ति पर जो पाण्डित्य दिखाया है उसे देखते तो यही कहना पड़ता है कि अच्छा होता कि यह कवि लक्षण-ग्रन्थ न लिखकर कविता के सीधे खुले मार्ग पर चलते।

इन सब बातों के अतिरिक्त इन लोगों के सामने भाषा की भी कठिनाई थी। ब्रजभाषा का विवेचन के उपयुक्त विकास नहीं हो पाया था। संस्कृत में भी इन गम्भीर विषयों की व्याख्या गद्य में ही की गई है। इन सब बातों को देखते हुए हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि आचार्य ऐसे महत्त्वपूर्ण पद के उपयुक्त प्रौढ़ता तथा योग्यता रीतिकाल के किसी भी कवि में भी न थी।

चिन्तामणि त्रिपाठी:— ये कानपुर के अन्तर्गत घाटमपुर

तहसील के टिकवाँपुर ग्राम के रहने वाले थे। भूषण, मतिराम इनके भाई थे। इनका जन्मकाल विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता हैं। कविकुलकल्पतरु, काव्यविवेक, काव्यप्रकाश और रामायण इनके ये ही चार ग्रंथ माने जाते हैं। ये कुछ दिनों तक शाहजहाँ बादशाह के यहाँ भी रहे थे। इनकी भाषा सुन्दर तथा शब्दालकारों से युक्त है।

महाराज जसवन्तसिंह:—ये अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'भाषा भूषण' के कारण हिन्दी के आचार्यों की श्रेणी में गिने जाते हैं। यह ग्रंथ चन्द्रालोक के आधार पर बनाया गया है। एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण दोनों रखे गये हैं। यह ग्रंथ अलकारशास्त्र का अध्ययन करने वालों के लिये एक सुन्दर प्रवेशिका है। इनके अन्य ग्रथ अनुभव-प्रकाश, आनन्द-विलास, तथा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक हैं। ये अनेक कवियों के आश्रयदाता भी थे।

भूषण:—इनका जन्मकाल स० १६७० है। इनका वास्तविक नाम क्या है, इसका पता नहीं। ये अपनी भूषण उपाधि ही से प्रसिद्ध हैं। छत्रपति शिवाजी इनके आश्रय-दाता थे। पन्ना के महाराज छत्रशाल के यहाँ भी ये सम्मानित हुए थे। एक बार जब ये पन्ना गये तो महाराज ने इनकी पालकी में स्वय कन्धा लगा दिया था। इस पर कवि ने कहा था—'शिवा को बखानो कि बखानो छत्रशाल को'। छत्रशाल की प्रशसा में भी इन्होंने कुछ कविताएँ की हैं। भूषण सच्ची वीरता पर मुग्ध होने वाले एक सच्चे कवि थे। इनके उद्गारों के

नायक हिन्दूरक्षक शिवाजी हैं। इनकी रचनाओं में उस समय की रचना की प्रतिध्वनि है। अपने आश्रयदाताओं की झूठी सच्ची वीरता का बखान तो अनेक कवियों ने किया है, पर भूषण की रचनाओं में जो बात है वह और कवियों में कहाँ प्राप्त है। इनके तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—'शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी तथा छत्रशाल दशक।' शिवराज-भूषण अलंकार-ग्रथ है। आचार्यत्व की दृष्टि से इसका अधिक महत्त्व नहीं है। लक्षण अव्यवस्थित और अस्पष्ट हैं। भूषण की भाषा प्राय: शिथिल है। पर उसमे एक ओज सर्वत्र लक्षित होता है। शब्दों का बहुत ही मनमाना प्रयोग हुआ है।

मतिराम:—इनका जन्म १६७४ में माना जाता है। ये बहुत दिनों तक बूँदी नरेश भावसिंह के आश्रित रहे। ये रीतिकाल के मुख्य कवियों में माने जाते हैं। अपने 'ललित ललाम तथा रसराज' नामक ग्रन्थों से इन्होंने इस काल का प्रतिनिधित्व किया। रसराज रसों का ग्रंथ है। ललित-ललाम अलकारों का ग्रथ है। कवि ने यथाशक्ति बड़ी स्पष्टता से अलकारों की व्याख्या की है। मतिराम की भाषा सर्वत्र ललित तथा प्रवाहपूर्ण हुई है। इनके सवैये सुन्दर ध्वनि से पूर्ण है। इनके अन्य ग्रंथ छदसार, साहित्यसार, लक्षण-शृंगार तथा मतिराम-सतसई हैं। इनके ग्रंथों का संपादन हो चुका है। जिन कवियों का साहित्यानुरागी जनता में प्रचार है उनमें मतिराम भी हैं।

बिहारीलाल:—इनका जन्म सं० १६६० के आस-

पास ग्वालियर के निकट के एक गाँव में माना जाता है। इनके एक दोहे से इस बात का आभास मिलता है कि इनका लड़कपन बुन्देलखण्ड में बीता था। ये जयपुर के मिर्जा राजा जयशाह के दरबार में रहा करते थे। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक बिहारी-सतसई है जिसमें ७०० से कुछ ऊपर दोहे संगृहीत हैं। कहते हैं कि महाराज जयसिंह इन्हें प्रति दोहे के लिए एक अशर्फी दिया करते थे। इस ग्रंथ का साहित्यिकों तथा साधारण जनता में बहुत आदर है। इस पर पचासों टीकाएँ निकल चुकी हैं। अनेक कवियों ने दोहे के भावों को विविध छन्दों में पल्लवित किया है। पठान सुलतान की कुण्डलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। प० अम्बिकादत्त व्यास ने बिहारी-बिहार में रोला छन्द में इन दोहों को पल्लवित किया है। शृंगार-सप्तशती नाम से इसका संस्कृत अनुवाद भी हो चुका है। अभी कुछ दिन हुए मुंशी देवी प्रसाद प्रीतम ने इन दोहों के ऊपर शेर बनाए हैं। बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने बडी योग्यता और परीश्रम से बिहारी-रत्नाकर नाम से इस पुस्तक का सम्पादन किया है। इसके अनेक दोहे आर्यासप्तशती तथा गाथासप्तशती के भावों की छाया पर बने है। प० पद्मसिंह शर्मा ने अपनी आलोचना में तुलनात्मक शैली से यह सिद्ध कर दिया है कि बिहारी ने मूल के भावों को बहुत ऊँचा कर दिया है। दोहा ऐसे छन्द में कवि ने बड़ी कारीगरी दिखाई है। एक भी शब्द अनावश्यक नहीं आया है। मात्राएँ पूरी करने के लिये कहीं भी दोहे में शिथिलता नहीं आने पायी है। दोहा छन्द जितना बिहारी को सिद्ध था उतना और किसी

कवि को नहीं। प्राय: दोहे शृंगार रस के हैं जिनमें नायिका-भेद की भिन्न भिन्न नायिकाओं के स्वरूप अंकित किये गये हैं। शृंगार की चेष्टाओं तथा हावों और भावों को विहारी ने बड़ी सूक्ष्मता से दिखाया है। प्रत्येक दोहा झलमलाता हुआ चित्र है जिसमें अन्तरंग तथा बहिरंग दोनों स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। कलापक्ष पर भी विहारी को कमाल का अधिकार था। एक एक दोहे में एक साथ अनेक जटिल अलंकारों की रक्षा की गई है। पर इससे भावधारा पर कहीं भी आघात नहीं पहुँचा है। प्रशंसा की तो यह बात है कि अलकारों के स्वरूप की रक्षा कवायद की सी कठोरता से की गई है। कवि ने भाषा का साहित्यिक स्वरूप ग्रहण किया जो लोक में प्रसिद्ध प्रयोग से कुछ भिन्न पड़ता है। कवि को व्रजभाषा के स्वरूप का बहुत ही अच्छा ज्ञान था। और कवियों की भाँति इसने शब्दों को विकृत नहीं किया है। अनेक स्थानों पर तो कुछ लोगों को साहित्य का ज्ञान न रहने के कारण ही त्रुटियाँ दिखाई पड़ी हैं। शृगार के अतिरिक्त कुछ दोहे भक्ति तथा नीति के भी आये हैं। भक्ति के दोहों में उतनी मार्मिकता कुछ न होकर सूक्ति की मात्रा ही अधिक है। इनके नीति के दोहे भी बहुत प्रसिद्ध हो चुके हैं। हिन्दी के प्राय: कवियों ने रगों का उपयोग बडे फूहरपन से किया है, उनकी दृष्टि मे काले और नीले रगों मे कोई भेद ही नहीं था। पर बिहारी में यह बात नही है। इन्हे भिन्न भिन्न रगों का तथा उनके संमिश्रण से उत्पन्न रंगों का बहुत ही सूक्ष्म ज्ञान था। अनेक दोहों में इस ज्ञान का आभास मिलता

है। इनके दोहों के विषय में लोक में प्रसिद्धि है:—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर;
देखत में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर।

कुलपति मिश्र:— ये आगरे के रहने वाले ब्राह्मण थे। ये जयपुर के महाराज रामसिंह के दरबार में रहते थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रसरहस्य' है जिसका रचनाकाल सं० १७२७ दिया है। इधर खोज मे इनके कुछ और ग्रन्थ भी प्राप्त हुए हैं। मिश्रजी सस्कृत-साहित्य के तथा रीतिग्रन्थों के अच्छे पण्डित प्रतीत होते हैं इन्होंने मम्मट के काव्यप्रकाश से सहायता ली है। पर काव्यवद्ध होने के कारण ग्रन्थ मे विषय का निरूपण उतनी शुद्धता से नहीं हो पाया है।

सुखदेव मिश्र:— ये रायबरेली जिले के अन्तर्गत दौलतपुर ग्राम के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। ये बहुत दिनो तक असोथर के राजा भगवतराय खीची के यहाँ रहे थे। इन्होंने अपने छन्दविचार ग्रन्थ में छन्दःशास्त्र का अच्छा निरूपण किया है। रसार्णव तथा फाजिलअली-प्रकाश की शृङ्गारिक रचनाएँ बहुत ही सरस बन पड़ी हैं। अध्यात्मप्रकाश नामक ग्रन्थ कवि ने वेदान्त तथा वैराग्य पर लिखा है।

कालीदास त्रिवेदी:— ये अन्तर्वेद के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके ग्रन्थ वारवधू-विनोद, जँजीराबन्द तथा राधा-माधव-बुधमिलन विनोद हैं। इन्होंने अपने कालीदास-हजारा नामक ग्रन्थ में अनेक कवियो की रचनाओं के सग्रह

प्रस्तुत किये है। पुराने लोगो के मुँह से इनके कवित्त प्रायः सुने जाते हैं।

नेवाज :—ये अन्तर्वेद के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका गद्य-पद्यमय शकुन्तला नाटक बहुत प्रसिद्ध है। इनकी रचनाएँ प्रायः संग्रह ग्रन्थों में मिलती हैं। इनके शकुन्तला नाटक का निर्माण स० १७३७ में हुआ था।

देव :—ये इटावा के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्मकाल स० १७३० के लगभग माना जाता है। इन्हे कोई भी ऐसा आश्रयदाता नही मिला जिसके यहाँ ये कुछ दिन टिक कर रह पाते। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हे अपने निर्वाह के लिये अनेक लोगो के यहाँ रहना पडा। इनके ग्रन्थों की सख्या ७० तक बताई जाती है। ये प्रायः अपने ग्रन्थों से कुछ कवित्त लेकर एक नवीन ग्रन्थ का ढाँचा खड़ा कर देते थे। ऐसा इन्हे अपने आश्रयदाताओ को प्रसन्न करने के लिये करना पड़ता था। इन्होने अपने ग्रन्थों में रसो, अलकारो आदि काव्याङ्गो का विशद निरूपण किया है। अनेक स्थानो पर कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं, जिससे प्रतीत होता है कि इनका ज्ञान निर्भ्रान्त नही था। विषय की दृष्टि से हम इनकी रचनाओं के दो विभाग कर सकते हैं, शृगारी रचनाएँ तथा वेदान्त-विषयक रचनाएँ। ब्रह्मदर्शन-पचीसी तथा तत्त्वदर्शन-पचीसी मे वैराग्य-प्रधान रचनाएँ मिलती हैं। कवि ने ससार के प्रति बहुत विरक्ति प्रकट की है जिससे प्रतीत होता है कि कवि को अपने जीवन में कभी सुख और शान्ति नहीं मिली।

इस कवि में अनेक स्थानों पर सच्ची मौलिकता मिलती है। कभी-कभी यह कवि इतनी ऊँचाई तक उड़ा है जितनी ऊँचाई तक बहुत कम कवि उड़ पाये होंगे। अपने सच्चे क्षणों में सच्ची अनुभूति से प्रेरित होकर देव ने बहुत सुन्दर रचनाएँ की हैं किन्तु ये सुन्दर क्षण इस कवि को बहुत कम प्राप्त हो पाते थे। इसी कारण कवि ने ऐसी रचनाओं का एक ढेर भी प्रस्तुत किया है जो बहुत निम्नकोटि की हैं। शब्दों के प्रयोग में इन्होंने बहुत स्वच्छन्दता से काम लिया है। अनेक शब्दों को ऐसा विकृत कर दिया गया है कि अर्थ तक पहुँचने में भी बाधा होती है।

सूरति मिश्र :—ये आगरे के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन्होंने बिहारी-सतसई की अमरचन्द्रिका नामक टीका सं० १७९४ में प्रस्तुत की। इसके अतिरिक्त केशवदासजी की कविप्रिया और रसिकप्रिया पर भी इन्होंने ब्रजभाषा में टीकाएँ लिखी थीं। इनके अन्य ग्रंथ अलंकारमाला, काव्य-सिद्धान्त, रस-रत्न-माला, सरस-रस तथा नखशिख हैं। इनके अनेक ग्रन्थ सुने ही गये हैं, अभी तक देखने में नहीं आये।

कवीन्द्र :—इनका जन्म सं० १७३६ में हुआ था। ये कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ रस-चन्द्रोदय है। इनकी रचनाएँ प्रवाहपूर्ण शैली में हैं। भाव स्निग्ध तथा गठे हुए हैं।

श्रीपति :—ये कालपी के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—कविकल्पद्रुम, अनुप्रास-विनोद, रससागर, विक्रमविलास। इनके काव्यसरोज की रचना

सं० १७७७ में हुई थी। इनमें हम उच्चकोटि का आचार्यत्व पाते हैं।

इनकी रचनाएँ भी सरस तथा स्वाभाविक हुई हैं। कविता मे शब्दालकारों का भी ये अच्छा निर्वाह कर लेते थे।

तोषनिधि :— ये शृंगवेरपुर के रहने वाले सरयूपारी ब्राह्मण है। इनकी दो पुस्तकें विनयशतक और नखशिख अभी कुछ दिन हुए प्राप्त हुई हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ सुधानिधि को साहित्यिक पहले से जानते थे। यह एक रीतिग्रन्थ है। कवि को अपनी कल्पनाओं में अच्छी सफलता मिली है। भाषा शुद्ध तथा प्रवाहपूर्ण है। कवि में सहृदयता के साथ ही काव्यरीति पर अच्छा आधिकार है। इनका सुधानिधि ग्रन्थ सं० १७९१ मे बना था।

सोमनाथ :— इन्होंने सं० १७९४ मे 'रसपीयूष-निधि' नामक रीतिग्रन्थ की रचना की। कवि का अपने विषय पर अच्छा अधिकार प्रतीत होता है। ये अपना नाम कविता में शशिनाथ ही रखते थे। इनकी रचनाएँ प्राचीन संग्रह-ग्रन्थों मे प्राप्त होती हैं। इन्होंने सिंहासन-बत्तीसी का भी पद्यबद्ध अनुवाद किया है। खोज मे इनके दो ग्रन्थ और मिले हैं—कृष्ण-लीलावती तथा माधव-विनोद नाटक। इनमें सच्चे कवियो की सी भावुकता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। भाषा में घरेलू मिठास अधिक है।

रसलीन :— इनका नाम सैयद गुलाम नबी था। इनका निवासस्थान हरदोई जिले के अन्तर्गत बिलग्राम नामक ग्राम

है। इस ग्राम में प्रायः विद्वान होते आये हैं। इनका अंगदर्पण नामक ग्रन्थ, जिसकी रचना स० १७९४ में हुई, बहुत प्रसिद्ध है। इन दोहों का विषय प्राय: वही है जो बिहारी का विषय है। इन दोनों की शैली में भी समता है। यह बात दूसरी है कि ये बिहारी के समान उतना ऊपर नहीं उठ पाये। इन्होंने 'रस-प्रबोध' नामक एक रीतिग्रन्थ की भी रचना की है।

भिखारीदास :—ये प्रतापगढ़ जिले के अन्तर्गत ट्योंगा ग्राम के निवासी थे। इन्होंने अपना पूरा परिचय अपने ग्रन्थों में दिया है। ये प्रतापगढ़ के राजा पृथ्वीपति के भाई हिन्दूपति के आश्रय में रहा करते थे। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं।

काव्यनिर्णय (१८०३), शृङ्गार-निर्णय, छन्दार्णव-पिङ्गल, रस-सारांश तथा विष्णुपुराण। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने अमरकोष का अनुवाद भी अमरप्रकाश नाम से पद्य-बद्ध किया। हिन्दी के आचार्यों में दासजी का बहुत ऊँचा स्थान माना जाता है। केशवदास के पश्चात् प्रायः लोगों की दृष्टि इन्हीं पर जाती है। यद्यपि ये बहुत अशों में श्रीपति के काव्य-सरोज के ऋणी हैं तथापि जितनी प्रसिद्धि इन्हें प्राप्त हुई उतनी श्रीपति को न प्राप्त हो सकी। इन्होंने काव्यांगों के भीतर आने वाले शब्द-शक्ति आदि विषयों को भी लिया है। छन्दों पर भी ग्रन्थ लिखे हैं। इस प्रकार आचार्यत्व का उत्तरदायित्व इन्होंने पूरी तरह निबाहा है। यह वात दूसरी है कि अपने अध्ययन की अपूर्णता के कारण इन्हे अनेक स्थानों पर भ्रम हुआ है। शुद्ध

कवि के रूप मे भी इन्हे अच्छी सफलता हुई है। इस काल के प्रतिनिधि कवियो की रचनाओं की विशेषताओं को हम दासजी की रचनाओं में एक ही स्थान पर देख सकते हैं। इनकी कल्पना सदा संयत तथा परिमित रही। भाषा प्रवाहपूर्ण तथा शिष्ट है। ये उस समय की प्रचलित काव्य-परिपाटी से भली भाँति परिचित थे।

दूलह:—ये कालीदास त्रिवेदी के पौत्र तथा कवीन्द्र उदयनाथ के पुत्र थे। इनका कविताकाल सं० १८२५ के आसपास माना जा सकता है। इनकी प्रसिद्धि इनके ग्रन्थ 'कविकुल-कण्ठाभरण' के कारण है। इन्होने लक्षणो तथा उदाहरणों को एक ही छन्द मे रखा है। ग्रन्थ मे केवल ८५ पद्य हैं। इनकी रचना परिमाण में बहुत ही थोडी है। अपने काव्य-चातुर्य के कारण ये सदा मतिराम और देव की श्रेणी में गिने जाते हैं। इनकी सरस रचनाएँ प्राय: ब्रजकाव्य-प्रेमियो को कण्ठ रहती हैं। इनकी प्रशसा में किसी ने कहा है "और बराती सकल कवि, दूलह दूलहराय"

रघुनाथ:—ये काशी के महाराज वरिवंडसिह के आश्रय में रहा करते थे। इनके शिष्य मणिदेव की वश-परम्परा अभी तक काशी में चल रही है। इनके वनाये हुए 'काव्य-कलाधर, रसिकमोहन, जगतमोहन तथा इश्क-महोत्सव' आदि ग्रन्थ हैं। रसिकमोहन अलंकार का ग्रन्थ है, काव्य-कलाधर में रसो की व्याख्या की गई है। जगतमोहन में कृष्ण की दिनचर्या कही गई है। इसमें इन्होने अपने जिस वस्तु-ज्ञान तथा

व्यापार-ज्ञान का परिचय दिया है उसकी सामग्री इन्हें काशीनरेश के यहाँ प्राप्त हुई होगी । इश्क-महोत्सव नामक ग्रथ में इन्होंने खड़ी बोली में रचना की है। इनका कविताकाल सं० १७७५ से १८२० तक माना जा सकता है।

बेनी बंदीजन:—ये अवध के प्रसिद्ध वजीर टिकैत राय के यहाँ रहा करते थे। ये अपने भँड़ौओं के कारण प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार की रचनाओ मे किसी न किसी का उपहास किया जाता है। इस ग्रंथ में कवि ने प्रायः उन धनपतियो का उपहास किया है जिन्होंने इन्हे दान में अच्छी सामग्री नहीं दी। इनके अन्य ग्रंथ टिकैतप्रकाश तथा रसविलास है। इनका कविताकाल १८५० से १८८० तक माना जा सकता है।

बेनी प्रवीन:—ये लखनऊ के निवासी थे तथा कान्यकुब्जों के अन्तर्गत वाजपेयी थे। ये कुछ दिनों तक विठूर के नानाराव के यहाँ भी रहे थे। इन्हीं नानाराव के नाम पर इन्होंने 'नानाराव-प्रकाश' नामक अलंकार-ग्रथ की रचना की। इनके दूसरे ग्रन्थ 'नवरस-तरग' की रचना स० १८७४ में हुई। इसमें नायिकाभेद आदि विषय हैं।

पद्माकर भट्ट:—रीतिकाल के कवियों में इनका बहुत महत्त्व है। साधारण जनता के मुँह से जितना इनका नाम सुना जाता है उतना बिहारी और देव का भी नहीं। इनका जन्म बाँदा जिले में स० १८१० मे हुआ। ये अपने जीवन में बहुत रसिक थे। गगा ही के तट पर कानपुर में सं०

१८६० में शरीर छोड़ा। ये अनेक राजाओं तथा महाराजाओं के यहाँ आते जाते रहते थे। एक बार सितारे के महाराज रघुनाथराव ने इन्हे एक लाख रुपया और दस गाँव दिये थे। इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ जगत्विनोद जयपुर के महाराज जगतसिंह के नाम पर बनाया। जयपुर के गनगौर मेले का इन्होंने अच्छा वर्णन किया है। कुछ दिनो तक ये ग्वालियर दरबार मे भी रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हें जीवन मे कभी सुख और शान्ति नही मिली। अन्तिम समय में इन्होंने गङ्गालहरी नामक ग्रन्थ की रचना की। अपने रामरसायन ग्रन्थ में वाल्मीकि रामायण के आधार पर इन्होंने रामायण की कथा गाई है। इसकी कविता साधारण कोटि की हुई है। विषय की दृष्टि से ये शृङ्गार तथा शान्तरसों के कवि हैं। अनुप्रास इनका सिद्ध शब्दालङ्कार है। हावों का यह अच्छा मूर्त्तविधान कर लेते थे। शृङ्गार को बहुत ही रससिक्त पंक्तियाँ इनकी कलम से निकली हैं। इनकी भाषा में लाक्षणिक प्रयोग भी पाये जाते हैं। पर यह लक्षणा प्रयोजनवती नहीं है जो नवीन विधानों की रचना करती है, यह रूढ़ा लक्षणा है जो प्रचलित प्रयोगों के उचित प्रयोग से अपना काम चलाती है।

प्रतापसाहि:—रीतिकाल के अन्तिम दिनों के ये सबसे प्रसिद्ध कवि हैं। रीतिकाल की परम्परा इनकी रचनाओं में आकर पूर्णता को प्राप्त हुई। इसके पश्चात् ऐसी रचनाओं में शिथिलता आने लगी। इनका रचनाकाल स० १८८० से १६०० तक माना जा सकता है। इनकी गणना पद्माकर तथा मतिराम के

साथ की जाती है। इन्होंने अपनी व्यंग्यार्थकौमुदी में वस्तु-व्यजना के उदाहरण रखे हैं। इस वस्तु-व्यजना की स्थापना के लिये कवि को बहुत ऊहापोह करना पड़ा है। उस समय की काव्य-परिपाटी का पूरा परिचय बिना हुए वस्तु-व्यंजना तक पहुँचना असम्भव ही समझिये। इनके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ शृङ्गार-मञ्जरी, अलङ्कार-चिन्तामणि, जयसिंह-प्रकाश तथा शृङ्गार-शिरोमणि हैं। इनकी कविताएँ उच्चकोटि की बन पड़ी हैं। ये अपनी रचनाओं से अपने काल का अच्छा प्रतिनिधित्व करते हैं।

रीतिकाल के अन्य कवि

रीतिकाल की बॅधी हुई परिपाटी के अन्तर्गत जो कविगण आये हैं उनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इस काल मे अनेक सिद्ध कवि हुए हैं। इसके साथ हमे यह भी मानना चाहिए कि रीति के तग कठघरे के भीतर अपनी करामात दिखाने की कामना से अनेक कवियों ने अपनी प्रतिभा को कुण्ठित भी कर दिया। यदि स्वतत्रतापूर्वक काव्यरचना करने का अवसर इन्हे मिलता तो सम्भव है इनकी रचनाओ में अधिक स्वाभाविकता रही होती। इस प्रकरण मे जिन कवियो का उल्लेख होगा उन्होंने किसी प्रतिबन्ध के भीतर रह कर रचनाएँ नहीं कीं। इस प्रकार के कवियो में हम अधिक स्वाभाविकता पाते हैं। इनमे से प्रधान वर्ग उन कवियों का है जिनके काव्य का विषय प्रेमवृत्ति रही है। जिन लोगो ने लौकिक आलम्बनों को दृष्टि मे रखकर रचनाएँ की हैं उन्हे हम शृङ्गारी कवियो की श्रेणी में ले सकते हैं। जिन कवियों के प्रेम के उद्गारों का आलम्बन लोकोत्तर रहा है उन्हे भक्त कवि कह सकते हैं। इन भक्त कवियो को हम उन्हीं प्राचीन कवियो की परम्परा में ले सकते हैं जिनका वर्णन भक्तिकाल के अन्तर्गत हो सकता है। भक्ति के भीतर ही निर्गुणवादियो को भी ले लेना चाहिए चाहे उनकी रचनाओ मे वैसी सरसता और मूर्तिमत्ता न प्राप्त होती हो।

ये कवि ज्ञान–वैराग्य की बाते सुन्दर उक्तियों मे कहते रहे हैं। इस काल में अनेक ऐसे कवि भी दृष्टिगोचर होते हैं जिनकी रचनाओं में लोकव्यवहार से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी बातों का समावेश रहता है। इनको हम रहीम आदि की परम्परा में ले सकते हैं। इस काल के भीतर अनेक प्रबन्धकार कवि भी हुए। जिनका उल्लेख प्रसगानुसार किया जायगा।

सबलसिंह चौहान :— इन्होंने दोहों और चौपाइयों मे सम्पूर्ण महाभारत की कथा को लिखा है। यह ग्रन्थ बहुत बडा है। इस कवि को अपनी सारी आयु इसी ग्रन्थ को लिखने मे लगा देनी पडी होगी। इसका रचनाकाल स० १७१८ से १७८० तक माना जाता है।

बैताल :— ये एक भाट थे और राजा विक्रम साहि के दरबार मे रहते थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में विक्रम को सम्बोधित किया है। लोकव्यवहार से सम्बन्ध रखनेवाली बातों को इन्होंने पद्यबद्ध किया है। वैसवाड़े में इनकी सूक्तियॉ घर घर लोगो को याद हैं।

वृन्द :—ये अपनी 'वृन्द-सतसई' के कारण प्रसिद्ध है। इसकी रचनाएँ वहुत ही साधारण कोटि की हुई हैं। इनकी गणना सूक्तिकारों में हैं। ये स० १७६१ के आसपास वर्तमान थे।

आलम :— इनका जन्म एक ब्राह्मण कुटुम्ब में हुआ था। ये औरङ्गजेब के पुत्र मुअज्जम के आश्रय में रहते थे। इनका कविताकाल स० १७४० से १७६० तक है। कहते हैं किसी शेख़ रॅगरेजिन की सहृदयता से आकृष्ट होकर ये

मुसलमान हो गये थे। इनकी प्रेयसी भी सुन्दर रचनाएँ कर लेती थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये दोनों मिलकर रचनाएँ किया करते थे। इनकी कविताओं का सग्रह 'आलम केलि' नाम से हुआ है। यह कवि अपने जीवन मे बहुत ही रसिक और सहृदय था। फलस्वरूप इसकी रचनाओ में भी सच्ची मार्मिकता प्राप्त होती है।

गुरु गोविन्दसिंह :—ये सिक्खों के अन्तिम गुरु थे। इनका बनाया हुआ दशम ग्रन्थ है। इसमें इन्होंने अवतारों की कथा को बड़े विस्तार से लिखा है। इन्होंने 'चण्डीचरित' नाम से दुर्गासप्तशती का अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। यह अनुवाद सवैयों में है। इसके अतिरिक्त इन्हीं के नाम से एक अन्य अनुवाद भी प्राप्त हुआ है जो विविध छन्दों में है। उससे प्रतीत होता है कि इन्होंने इस ग्रन्थ के दो अनुवाद प्रस्तुत किये। गुरु गोविन्दसिंहजी का साहित्यिक व्रजभाषा पर अच्छा अधिकार था। अनेक स्थानों पर पजाबी भाषा का भी प्रभाव पड़ा है।

लाल कवि :—ये छत्रशाल महाराज के दरबार में रहा करते थे। इनका पूरा नाम पुरोहित गोरेलाल है। ये केवल कवि ही नहीं थे वीरता के सच्चे उपासक थे। ये अनेक युद्धों में छत्रशाल के साथ जाया करते थे। जनश्रुति के अनुसार ये एक युद्ध मे ही मारे गये थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'छत्रप्रकाश' है। इसमें इन्होंने आँखों देखी घटनाओं का वर्णन किया है। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। वीररस की

पुस्तकों में इस ग्रन्थ को अच्छा स्थान प्राप्त है। कवि अपने विषय में तल्लीन होकर बड़ी ओजपूर्ण भाषा में छत्रशाल का बखान करता है। कवि को प्रबन्धकाव्य की आवश्यकताओं का भी अच्छा ज्ञान था।

रसनिधि :—इनका हजार दोहों का रतनहजारा नामक ग्रन्थ है। इनके दोहों पर बिहारी की भाषा तथा भाव दोनों का प्रभाव पड़ा है। फारसी कविता की शैली का भी इनकी रचनाओं पर प्रभाव पड़ा है। ये १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वर्तमान थे।

घनानन्द :—इनका जन्म १७४६ के आसपास हुआ था। ये दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह के दरबार में मीर मुंशी थे। ये सुजान नाम की किसी वेश्या पर मुग्ध थे। एक बार जब बादशाह ने इनसे गाने का आग्रह किया तब इन्होंने बादशाह की ओर पीठ तथा सुजान की ओर मुँह करके कुछ सुनाया। इस व्यवहार से बादशाह ने क्रुद्ध होकर इन्हें निकाल दिया। इस विपन्नावस्था में उस वेश्या ने इनका साथ नहीं दिया—इस पर इनके चित्त में वैराग्य उत्पन्न हुआ और ये वृन्दावन में जाकर रहने लगे। अपना शेष जीवन कृष्ण की उपासना में बिताया। उस वेश्या के शरीर का मोह छोड़ कर भी उसके नाम का मोह न छोड़ सके। अपनी सभी रचनाओं में इन्होंने यह नाम रखा है। ये रचनाएँ भक्ति के ऊपर घटाई तो अवश्य जा सकती हैं पर इनकी ध्वनि लौकिक प्रेम की ओर जितनी है उतनी पारमार्थिक प्रेम की ओर नहीं। कौन कह सकता है कि कृष्ण नामोच्चारण करते

हुए भी ये अपनी उसी प्रेयसी का स्मरण न करते रहे होंगे ? ये सवत् १७९६ की नादिरशाही मे मारे गये थे। नादिरशाह को किसो ने इस भ्रम मे डाल दिया था कि इनके पास बहुत सम्पत्ति है पर इनके पास कुछ न पाकर सैनिकों ने इनके हाथ काट डाले।

इनकी व्रजभाषा का स्वरूप प्रामाणिक और आदर्श माना जाता है। व्रज के विविध प्रयोगो का जितना परिचय इनको था उतना और कम कवियों को था। अपने इसी अधिकार के बल पर इन्होंने अनेक वक्रतापूर्ण लाक्षणिक प्रयोगों की उद्भावना की। ये अपनी भाषा को अपने भावाभिव्यजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये मनमाने ढग से मोड़ सकते थे। प्रेम की पीर की जैसी सच्ची व्यजना इन्होंने की है वैसी और किसी हिन्दी कवि ने नहो। इनके निम्नलिखत ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है 'सुजान-सागर, विरह-लीला, रसकेलि-वल्ली, और कृपाकाण्ड'। इनका एक बहुत बड़ा ग्रन्थ छत्रपुर के राजपुस्तकालय में रखा है।

भक्तवर नागरीदास :—ये कृष्णगढ़ के राजा थे। इनका लौकिक नाम महाराज सावतसिंह जी है। इनका जन्म स० १७५६ मे हुआ था। इनके भाई ने इनके राज्य पर अधिकार कर लिया था। इन राजनीतिक झगड़ों के कारण इन्हे वैराग्य हो गया। अपना शेष जीवन इन्होंने वृन्दावन में बिताया। वृन्दावन में यह अपनी उपपत्नी 'वणी ठणी जी' के साथ रहते थे। कृष्णगढ़ में इनकी ७० के लगभग पुस्तके सगृहीत हैं।

जिस प्रकार की कृष्णभक्त कवियो को प्रायः रचनाएँ होती हैं उसी प्रकार की रचनाएँ इन्होंने भी की हैं।

महाराज विश्वनाथसिंह :— ये रीवाँ के प्रसिद्ध नरेश थे। ये स०१७७८ से १७६७ तक गद्दी पर रहे। इनकी प्राय. रचनाएँ वैराग्य तथा वेदान्त से सम्बन्ध रखती हैं। अनेक रचनाओं में रामभक्ति भी दृष्टिगोचर होती है। इनका आनन्द-रघुनन्दन नाटक ही हिन्दी का प्रथम नाटक माना जाता है। नाटक के सवाद ब्रजभाषा में रखे गये हैं। ये कवियों के आश्रयदाता भी थे।

जोधराज :— इन्होंने स० १८७५ में हम्मीरदेव के चरित का वर्णन हम्मीररासो में किया। इस ग्रन्थ की भाषा बहुत कुछ प्राचीनता लिये हुए है। कविता मे ओज की एक अच्छी मात्रा सर्वत्र मिलती है।

गिरधर कविराय :— इनका कविताकाल १९ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। ये अपनी कुण्डलियों के कारण प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं मे कवित्व के दर्शन नहीं होते। इनकी गणना सूक्तिकारों में है।

गुमान मिश्र :— ये पिहानी के राजा अकबर अली खाँ के आश्रय में रहते थे। इन्होंने स० १८०० में श्रीहर्ष कृत नैषधकाव्य का अनुवाद प्रस्तुत किया। इस अनुवाद में कवि को उतनी सफलता नहीं हुई है। अनेक स्थानो पर भाव को समझना कठिन हो जाता है।

सूदन :— ये भरतपुर के महाराज सूरजमल के आश्रय में रहते थे। अपने सुजान-चरित्र में इन्होंने अपने आश्रयदाता के चरित्र का वर्णन किया है। कवि ने जिन घटनाओं को लिया है वे ऐतिहासिक हैं। इस कवि में भी वह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है जिसकी प्रेरणा से कविगण प्रासगिक वार्ताओं और विषयो की सूची सी प्रस्तुत कर देते थे। वीररस की परिपाटी के अनुसार इन्होंने शब्दो को बहुत तोड़ा-मरोडा भी है। अनेक स्थानो पर कविता सुन्दर हुई है।

व्रजवासीदास :—इन्होंने स० १८२७ मे व्रजविलास नामक प्रबन्धकाव्य की रचना की है इन्होंने स्वीकार किया है :—

वामें कछुक बुद्धि नहीं मेरी, युक्ति उक्ति सब सूरहि केरी।

ग्रन्थ में कृष्णचरित्र गाथा गया है। कृष्णभक्तों में इस ग्रन्थ का प्रचार है।

गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव :— गोकुलनाथ और गोपीनाथ रघुनाथ बन्दीजन के पुत्र और पौत्र थे। मणिदेव बन्दीजन इन लोगों के शिष्य थे। इन तीनों ने मिल कर मपूर्ण महाभारत का अनुवाद प्रस्तुत किया। यह ग्रथ प्राय. दो हजार पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इन कवियों ने कहीं भी शिथिलता नहीं आने दी है। काशीनरेश महाराज उदितनारायण जी ने इस ग्रंथ पर लाखों रुपये व्यय किये। यह ग्रथ प्रकाशित हो चुका है। गोकुलनाथ ने इस महाभारत के अतिरिक्त चेत-चन्द्रिका, राधाकृष्ण-विलास, राधा-नखसिख आदि अन्य ग्रंथों की भी

रचना की। चेतचन्द्रिका अलंकारों का ग्रंथ है।

बोधा:— ये बाँदा के रहने वाले सरयूपारी ब्राह्मण थे। पन्ना दरबार मे इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। इनका जन्म सं० १८०४ मे हुआ था। कहते हैं कि ये सुभान नाम की किसी वेश्या पर आसक्त थे। इसी अपराध पर महाराज ने इन्हे दरबार से निकाल दिया था। अपने वियोगकाल मे इन्होने 'विरह-वारीश' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ के अतिरिक्त 'इश्कनामा' नामक एक ग्रंथ और भी पाया गया है। ये घनानन्द के समान मौजी जीवों में थे। प्रेमवृत्ति की व्यंजना इन्होने अच्छी की है।

मधुसूदनदास:— इन्होंने सं० १८३९ में 'रामाश्वमेध' प्रबन्धकाव्य लिखा। इसमें रामचरित्र के उत्तरार्द्ध की उन घटनाओं का समावेश किया गया है जो रामचरित-मानस में नहीं आ पाई हैं। यह ग्रंथ उसी शैली में लिखा गया है जिस शैली में रामचरित-मानस लिखा गया है। इनकी भाषाशैली तुलसीदास की शैली से बहुत मेल खाती है। कवि ने प्रबन्ध-काव्य की आवश्यकताओं पर भली भाँति ध्यान रखा है।

सम्मन:—ये मालवा के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८३४ में हुआ था। इनकी गणना सूक्तिकारों में है। इनकी रचनाओ में मार्मिकता तथा सहृदयता की मात्रा अधिक पाई जाती है। इनके दोहे बैसवाड़े तथा अन्तर्वेद मे बहुत प्रसिद्ध हैं।

ठाकुर (असनी वाले):— असनी में इसी नाम के दो कवि हुए हैं। पहले ठाकुर सं० १७०० के आसपास हुए थे।

इनका अधिक वृत्तान्त ज्ञात नहीं है। इनकी फुटकल रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। असनी के दूसरे ठाकुर काशी के प्रसिद्ध रईस बाबू देवकीनन्दन के आश्रय में रहा करते थे। इन्होंने 'सतसई वरनार्थे' नाम की एक विहारी-सतसई की टीका लिखी।

ठाकुर बुंदेलखंडी:—इनका जन्म स० १८२३ में ओरछे में हुआ था। ये एक कायस्थ कुटुम्ब से थे। ये जैतपुर-नरेश केशरी सिंह के आश्रय में रहा करते थे। ये निर्भीक प्रकृति के सच्चे कवि थे। इन्होने अपनी रचनाओं मे लोकोक्तियों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है। प्रेमवृत्ति का इन्हे अच्छा परिचय था। लाला भगवानदीनजी ने 'ठाकुर-ठसक' नाम से इनकी रचनाओं का एक सुन्दर संग्रह निकाला था।

चन्द्रशेखर:— ये फतहपुर जिला के अंतर्गत मुअज्जमाबाद के रहने वाले वाजपेयी थे। इनकी प्रसिद्धि हम्मीर-हठ नामक प्रबंधकाव्य के कारण है। यह एक छोटा सा ग्रंथ हैं जिसमें हम्मीरदेव की वीरता का वर्णन है। कवि को भाषा पर अच्छा अधिकार है। इस ग्रंथ की उक्तियाँ अपने प्रांत में बहुत प्रसिद्ध हैं। इस ग्रंथ में अनेक प्रसंगों में कवि ने कुछ अश्लील अश भी रख दिये हैं, जो आधुनिक रुचि के अनुकूल नहीं पड़ते।

बाबा दीनदयाल गिरि:—इनका जन्मकाल सं० १८५९ में काशी के गायघाट मुहल्ले में हुआ था। ये संस्कृत के अच्छे पण्डित थे। इनकी अन्योक्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, इन अन्योक्तियों के प्रायः भाव संस्कृत-साहित्य से लिये गये हैं। बाबाजी को व्रजभाषा पर अच्छा अधिकार प्राप्त था। अपना 'दृष्टांत-तरंगिणि' नामक ग्रथ

इन्होंने दोहो में लिखा है। जिसमे नीति की कामचलाऊ बातें कही गई हैं। 'अनुराग-बाग' नामक ग्रंथ में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है। इनकी अन्योक्तियाँ 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' नामक ग्रंथ मे मिलती हैं। इनका काशीवास स० १६१५ मे हुआ था।

गिरधरदास :—इनका नाम गोपालचन्द्र था, पर कविता में ये गिरधरदास, गिरिधर तथा गिरिधारन लिखा करते थे। इनका जन्म सं० १८९० में तथा मृत्यु स० १६१७ में हुई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इनके पुत्र थे। हरिश्चन्द्रजी ने एक स्थान पर लिखा है कि इन्होंने चालीस ग्रन्थों की रचना की। ये ग्रन्थ अभी तक देखने में नहीं आये। 'जरासन्ध-वध' नामक प्रबन्धकाव्य अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है। इनकी भाषा प्रायः शब्दालकारों से लदी हुई होती थी।

द्विजदेव :—ये अयोध्या के महाराज थे इनकी लिखी हुई शृंगार-लतिका तथा शृंगार-बत्तीसी नामक पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। अयोध्या की महारानी साहिबा ने अभी कुछ दिन हुए बहुत धन व्यय करके इस ग्रंथ का सपादन तथा प्रकाशन करवाया है। ग्रंथ मे चित्र भी दिये गये हैं। जितने ठाट से यह ग्रंथ निकाला गया है उतने ठाट से छपने का सौभाग्य हिन्दी के और किसी ग्रंथ को नहीं मिला। जब इतना व्यय किया गया तो उचित यह था कि इसका सपादन भी किसी साहित्य-मर्मज्ञ के द्वारा किया जाता। द्विजदेव व्रजकाव्य-परम्परा के अच्छे ज्ञाता थे। शृंगार-लतिका में इन्होंने ऋतुओं के बहुत अच्छे वर्णन रखे हैं।

आधुनिक काल—व्रजकाव्य धारा

हमारे साहित्य का प्रारम्भ जिस प्रान्त मे हुआ वह भाषाओं की दृष्टि से अनेक भाषाओ की सन्धि का प्रान्त था—एक ओर पूर्वी राजपुताना पड़ता था दूसरी ओर व्रजमंडल। व्रज-भाषा साहित्य में चलने तो अवश्य लगी पर बहुत दिनों तक इस पर राजस्थानी के प्रान्तीय प्रयोगो का प्रभाव बना रहा। बहुत दिनों के पश्चात् इस प्रभाव से मुक्त होकर भाषा ने अपने साहित्यिक स्वरूप को परिष्कृत करना प्रारम्भ किया। धीरे धीरे यह सम्पूर्ण उत्तरापथ की काव्यभाषा हो गई। अनेक प्रान्तो से शब्द और प्रयोग इसमे आने लगे। रीतिकाल के प्राय: कवि बैसवाड़े तथा अन्तर्वेद के रहने वाले थे, इन प्रान्तों की बोलियो का भी व्रज-भाषा पर प्रभाव पड़ा। अनेक कवि साहित्यिक पुस्तकों का अध्ययन करके भाषा पर अधिकार प्राप्त करते थे। इस प्रकार इस भाषा का साहित्यिक स्वरूप अपने ही प्रान्तीय स्वरूप से कुछ भिन्न हो चला। अनेक सिद्ध कवियो ने इसके स्वरूप की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया। तुलसी, बिहारी और घनानन्द ऐसे कवियों ने भाषा के स्वरूप की रक्षा बहुत सचेष्ट रहकर की। रीतिकाल के भीतर आकर अनेक कवियो ने भाषा के स्वरूप को बहुत कुछ विकृत किया, कवियो ने मनमानी प्रारम्भ कर दी। कुछ लोगों में तो भाषा के स्वरूप को समझने की क्षमता न थी, अत: उनके द्वारा भाषा विकृत हुई। कुछ लोगो ने भाषा के

स्वरूप को समझते हुए भी जान बूझ कर उसके स्वरूप को बिगाड़ा। भूषण और देव की गणना भी इन उच्छृंखल लोगों में की जा सकती है। रीतिकाल का अन्त होते होते व्रजभाषा वहुत कुछ विकृत हो चुकी थी। यह सच है कि पद्माकर और प्रताप साहि ने भाषा के स्वरूप की वहुत कुछ रक्षा की है पर दो एक व्यक्ति के प्रयत्न से हो ही क्या सकता था। ये लोग भी केवल उदाहरण ही न उपस्थित कर सकते थे, किसी को अपने मार्ग पर चलने के लिये वाध्य तो नहीं कर सकते थे! आधुनिक काल के प्रारम्भ में द्विजदेव ने भाषा का वहुत ही परिष्कृत तथा शिष्ट रूप सामने रखा। इन्होंने अनुचित प्रयोगों को काट छाँट कर अलग कर दिया। भारतेन्दु वावू हरिश्चन्द्र ने भाषा-संस्कार के इस कार्य को और भी आगे वढ़ाया—आधुनिक काल में व्रजभाषा वड़ी शुद्धता से प्रयुक्त हुई है। हरिश्चन्द्र, लक्ष्मणसिंह, वावू जगन्नाथदास रत्नाकर, श्री नवनीतलाल चतुर्वेदी, वावू राधा कृष्णदास, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला सीताराम बी. ए, राय देवीप्रसाद पूर्ण, पंडित रामचन्द्र जी शुक्ल, श्री सत्यनारायण कविरत्न, श्री वियोगी हरि आदि कवियों ने भाषा का वहुत ही सुन्दर स्वरूप हमारे सामने रखा है। इस काल में खड़ी वोली का आन्दोलन उठ खड़े होने पर भी व्रजभाषा में अच्छा साहित्य पर्याप्त मात्रा में प्रस्तुत हुआ। अनेक सुन्दर ग्रन्थों की रचना हुई। इनमें वुद्ध-चरित, वीरसतसई, उद्धव-शतक, गंगावतरण आदि ग्रन्थों के नाम लिये जा सकते हैं। अन्य भाषाओं से व्रजभाषा में अनेक सुन्दर ग्रन्थों के अनुवाद भी प्रस्तुत किये गये। लाला सीतारामजी

ने कालीदास के तीनो काव्यों रघुवंश, कुमारसंभव और मेघदूत के सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किये। श्रीधर पाठक जी ने सस्कृत से ऋतु-संहार तथा अग्रेजी से डेजर्टेड विलेज (Deserted Village) के अनुवाद प्रस्तुत किये। पं० रामचन्द्र जी शुक्ल का बुद्धचरित अग्रेज के लाइट आफ एशिया (Light of Asia) का अनुवाद ही है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् साहित्य-क्षेत्र से ब्रजभाषा को वहिष्कृत कर देने का आन्दोलन प्रवल होता गया। प० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के रूप में खड़ी बोली के प्रचारकों ने अपना नेता पाया। उस समय से खड़ी बोली प्रमुख स्थान पाने लगी। आज यह दशा है कि हिन्दी की प्रधान मासिक-पत्रिकाओं में ब्रजभाषा की रचनाएँ प्राय: देखने को नहीं मिलती हैं। पर ब्रजभाषा अभी मिटी नही है; और न इसके मिटने की कोई आशंका है। ब्रजमडल के लाखों निवासियों की यह मातृभाषा है। इसके पास प्रौढ़ कवियों की एक परपरा है जिनका अध्ययन सदा होता रहेगा। ब्रजभाषा में जो घरेलू परिचित स्वर मिलता है वह खड़ी बोली में अभी नहीं प्राप्त होता है। खड़ी बोली साहित्य में तो दौड़ लगा रही है, पर हमारे घरों में प्रान्तीय बोलियाँ ही बोली जाती हैं। खड़ी बोली के साहित्यिक रूप में उसका प्रान्तीय स्वरूप नही आ पाया है। हम चाहे तो कह सकते हैं कि हमें जो खड़ी बोली प्राप्त हुई है वह अधूरी है। इसी से वह कुछ उखड़ी सी, कुछ बाजारू सी लगती है। संस्कृत की रससिक्त पदावली के प्रयोग से इधर कुछ दिनों से इसकी मधु-

रता कुछ बढ़ रही है अवश्य, पर अभी हमें इस नवीन पौधे को बड़े परिश्रम से सींचना पड़ेगा। जिस प्रान्त से खड़ी बोली की उत्पत्ति है वह प्रान्त भारतीय सस्कृति की मुख्य भूमि बहुत दिनों से नहीं रहा है। इससे भी खड़ी बोली में भारतीय सस्कृति की मिठास उतनी नहीं प्राप्त होती। अब भी हमारे कान व्रजभाषा से अधिक परिचित हैं। अब भी जब कभी प्रातःकाल किसी वृद्ध भक्त के मुँह से हम सूर का कोई पद सुन लेते हैं तो हमे ऐसा लगता है कि हमारे घरों के शब्दो में कोई हमें परिचित तान सुना रहा है। इस प्रकार व्रजभाषा साहित्य के प्रचुर प्रयोग से हट कर भी हमारे हृदयों में स्थान बनाये हुए है।

अब यह देखना है कि इस आधुनिक काल में व्रजभाषा में किस प्रकार की रचनाएँ हुई। शृगार और भक्ति ये हमारे साहित्य के प्राचीन विषय हैं। शृगार की रचनाएँ या तो रीति की परिपाटी के अनुसार होती थीं या इस बन्धन को छोड़ कर किसी स्वतन्त्र क्रम से। आधुनिक काल में रीतिग्रन्थों के निर्माण में बहुत कमी रही, पर इस प्रकार की रचनाएँ होती अवश्य रहीं। अब भी राजाओं के आश्रय में रहने वाले कवि रीति-ग्रन्थ रचने में लगे हैं। हाँ साहित्य के चौराहे पर इस प्रकार की रचनाओं की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। सवत् १९०० के लगभग काशी में रहने वाले बेनी द्विज ने कुछ रीतिग्रन्थ बनाये थे। इधर इसी शैली का हरिऔध जी का रस-कलस प्रकाशित हुआ है। गद्य के विवेचन से उपाध्यायजी को विषय के सम्यक् प्रतिपादन में सहायता मिली है। कवि ने प्राचीन कवियों

की भाँति केवल शृंगार रस ही को न रखकर अन्य रसो को भी ग्रथ में उचित स्थान दिया है। इस ग्रन्थ का रीतिग्रन्थो की परपरा के भीतर एक महत्त्व का स्थान है।

इस युग में भक्ति की रचनाओं में बहुत शिथिलता रही। यह युग भक्ति के उतना अनुकूल भी नहीं पड़ा। मनुष्य जैसे भगवान से कुछ दूर होने लगा है। अब उसे ससार ही की जटिल समस्याओं को सुलझाने से स्वर्ग की चिन्ता करने का अवसर ही नहीं मिलता। प्रियप्रवास और साकेत के विषय भक्ति के ही अनुकूल हैं, पर इनके कवियों ने उनमें नवीनता ही लाने का अधिक प्रयत्न किया है। प्रियप्रवास में कृष्ण समाज-रक्षक के रूप में उपस्थित होते हैं। उसी प्रकार साकेत मे भी आधुनिक युग ही बोल रहा है। इस युग के प्रारंभ मे हरिश्चन्द्र ने भक्ति के कुछ सच्चे उद्गार सुनाये थे। इनका चरित्र बहुत जटिल था। इन्होंने अपने विषय मे 'पर्‌यो नारि के फन्द' कह कर अपने चरित्र का बहुत कुछ आभास दे दिया है। यह सब होते हुए भी इस रसिक कविहृदय में एक कोना था जहाँ कृष्ण-प्रेम को छोड़ और किसी की पैठ नहीं थी। इसी कोने से कभी कभी जो राग फूट उठता था वह अत्यन्त सरस और भावमय होता था। इनकी रचनाओं में घनानन्द तथा रसखान ऐसे कवियों की वाणी से मिलती हुई ध्वनि अब भी सुनी जा सकती है। कृष्ण-प्रेम की जैसी भावमयी रचना इन्होंने की है वैसी इस युग के और किसी कवि के द्वारा नहीं की जा सकी। रत्नाकर जी की भी बहुत सी रचनाओं का विषय यही भक्ति-भावना है। उद्धव-शतक में

सूरदास आदि भक्तियुग के कवियो की परंपरा स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इनके गगावतरण में भक्ति का परिपाक नहीं हो पाया है, फिर भी ग्रन्थ इसी परपरा में परिगणित होगा। इनकी गगालहरी तथा विष्णुलहरी की रचनाएँ अधिक मार्मिक हुई हैं। उन पर कवि की भक्ति-भावना की अच्छी छाप पडी है। पर रत्नाकरजी के भक्ति के उद्गारों में उतनी तल्लीनता और ममता नहीं, जितनी भारतेन्दुजी की रचनाओ में मिल जाती है। इधर कुछ दिनो पहले वियोगी हरिजी ने भी भक्ति की कुछ रससिक्त रचनाएँ सामने रक्खी थीं। उनमें हमें अष्टछाप के कवियों की वाणी की सी मिठास प्रतीत हुई थी। इधर आप दीन-दुखियों के रूप में भगवान को देखने लगे हैं, गोलोकविहारी कृष्ण दृष्टि से कुछ ओझल हो चले हैं। इस प्रकार भक्ति की रचनाओं का क्रम शिथिल पड़ जाने पर भी चला जा रहा है।

शृगार की रचनाओं के क्रम में उतनी शिथिलता नहीं रही। भारतेन्दुजी की ऐसी रचनाएँ सच्ची अनुभूति से पोषित थीं। इनकी रचनाओं में वियोग-जन्य विकलता का स्वर बहुत मार्मिक हुआ। इनकी शृगारी रचनाओ में वह शिथिलता नहीं मिलती जो रीतिकाल के अनेक कवियों की रचनाओं मे प्राप्त हुई थी। रीतिकाल के प्राय. कवियो ने नायिकाओं का बाह्य रूप ही अधिक देखा था, उनमें हृदय-पक्ष उतना नहीं आ पाया है। उर्दू की रचनाओं में हृदय-पक्ष को कुछ अधिक स्थान दिया जाता है। इसी से उर्दू के कवियों की रचनाओ मे सवेदन का अधिक मार्मिक स्वरूप प्राप्त होता है। हरिश्चन्द्रजी की रचनाओ

में भी हमे यही बात मिलती है । इनकी कविताओं में नखशिख पर कही गई उक्तियाँ प्रायः नहीं मिलेंगी । उनमें हृदय की सच्ची पुकार सुनाई पड़ती है । रत्नाकर जी की शृंगार-लहरी में भी ऐसी कविताओं का सग्रह प्राप्त होता है । इस कवि की ऐसी रचनाओं में कलापक्ष कुछ अधिक प्रबल हो गया है । इनकी वाणी रीतिकाल के कवियों की वाणी से मिलती जुलती है। इनकी रचनाओं में हम पद्माकर के एक बार फिर दर्शन करते हैं । पद्माकर और घनानन्द में बहुत भेद था । भारतेन्दु की बोली घनानन्द की बोली से मिलती हुई थी । रत्नाकर और पद्माकर प्रायः एक ही पथ के पथिक थे । प्रसादजी ने अपने यौवन के प्रारंभ में शृङ्गार रस की व्रजबोली में अच्छी रचनाएँ की थीं । इनका 'प्रेम-पथिक' पहले व्रजभाषा मे ही लिखा गया था । खड़ी बोली का बेतुका बाना तो इसे पीछे से पहनाया गया । अयोध्यासिंह उपाध्याय, नाथूराम शकर शर्मा, राय देवी-प्रसाद पूर्ण, बदरीनारायण चौधरी आदि कवियों ने भी व्रजकाव्य धारा के भीतर शृङ्गार मयी सुन्दर रचनाओं की पुष्पांजलि समर्पित की । आज भी ऐसी रचनाओं का क्रम चल रहा था । अभी उस दिन व्रज-विभूति नाम से पं० बलदेव प्रसाद जी मिश्र की रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमें बहुत ही मार्मिक तथा सच्ची अनुभूति से पोषित रचनाएँ प्राप्त होती हैं ।

इस काल के भीतर अनेक कवियो ने वीर रस की सुन्दर रचनाएँ की हैं । ऐसी रचनाओं के प्रायः नायक देशरक्षक वीर

पुरुष हैं । रत्नाकर जी ने अपने वीराष्टको में शिवाजी, राणा-प्रताप आदि अनेक वीरो की वीरता का बखान किया है। इनके अतिरिक्त अभिमन्यु आदि प्राचीन वीरो का स्मरण भी कवि ने किया है। अपनी ऐसी रचनाओं में कवि को पूरी सफलता मिली है । इधर वियोगी हरिजी ने वीर-सतसई लिखकर एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्त्ति की है । इसमें इन्होंने इस रस को और रसों की प्रतिद्वद्विता में बड़ी सफलता से रक्खा है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का एक अपना स्थान है । इस युग की वीर रसात्मक कविता प्रायः देशभक्ति की भावना से पोषित रही है । देशभक्ति का राग इस काल मे हमारे साहित्य का एक प्रधान विषय रहा है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र के समय से इस प्रकार की रचनाओं का क्रम प्रारम्भ हो जाता है । इस नवीन विषय के साथ साथ समाज-सुधार की भी ध्वनि सुनाई पड़ती रही है।

इस प्रकार सब दृष्टियो से इस काल में व्रजभाषा का साहित्य के क्षेत्र में सन्तोषजनक काम हुआ है । सिद्ध कवियो द्वारा भाषा का एक बहुत मँजा हुआ स्वरूप सामने रक्खा गया है। जितनी शुद्धता से व्रजभाषा इस काल में प्रयुक्त हुई है उतनी शुद्धता से किसी काल में नहीं हो पाई है । खड़ी बोली के इस उत्थान काल में भी व्रजवाणी की रचनाओं का क्रम चल रहा है।

व्रजभाषा के प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाएँ

सेवक (संवत् १८७२ से १९३८):—ये असनी निवासी ठाकुर कवि के पौत्र थे। ये काशी में बाबू हरिशंकर के आश्रय में रहते थे। काशिराज श्री ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के दरबार मे ये सम्मानित होते थे। महाराज का इन पर बड़ा अनुग्रह था। जब कभी ये बीमार पड़ जाते थे तो इनका समाचार लेने को महाराज नित्य अपना आदमी भेजते थे। उस काल का काशी का कविसमाज इन्हे सम्मान की दृष्टि से देखता था। ये निर्भीक स्वभाव के अनुरागी जीव थे। इनकी रचनाएँ रीतिकाल की शैली पर होती थीं। अपने आश्रय-दाता के पशुओं और पक्षियों पर भी इन्होंने रचनाएँ की हैं। नायिकाभेद पर इनका बनाया वाग्विलास ग्रन्थ प्रसिद्ध है। बरवै छन्द में एक नखशिख भी मिला है।

महाराज रघुराजसिंह (संवत् १८८० से १९३६):— ये रीवाँ के प्रसिद्ध नरेश थे। ये अनेक कवियों के आश्रयदाता तथा एक सुकवि थे। इनकी रचनाएँ प्रायः भक्ति तथा शृंगार रस की हैं। इनकी भक्ति की रचनाओं में सच्ची लगन दिखाई देती है। अपने रामस्वयंवर में इन्होंने रामकथा को बड़े विस्तार से गाया है। अनेक स्थलों पर सुन्दर तथा नवीन कल्पनाएँ भी की हैं। राजसी ठाटबाट के वर्णन बड़े मनोयोग से किये गये हैं। राजा होने से इन सब बातों का इन्हे अच्छा परिचय था,

उसका समुचित उपयोग इन्होंने किया है । शृंगारी रचनाओं में भी इन्हें अच्छी सफलता मिली । इनके हृदय का एक पक्ष शृंगारी रचनाओ में देखा जा सकता है दूसरा भक्ति की रचनाओ में । काव्यप्रेमियों के लिये दोनो पत्त प्रिय तथा महत्त्व के हैं । इन्हे व्रजकाव्य-परपरा का अच्छा ज्ञान था। उसका इन्होंने अच्छा उपयोग किया है। भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था । इनके बनाये अनेक ग्रंथ प्रचलित हैं, जिनमे रामस्वयंवर, रुक्मिणी-परिणय, आनदाबुनिधि, रामाष्टयाम आदि ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं ।

सरदार:—ये काशीनरेश ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के दरबार मे रहा करते थे। इनका कविताकाल सवत् १९०२ से १९४० तक है। उस समय काशीनरेश के आश्रय में एक अच्छा कविसमाज एकत्र था। इस समाज में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। नारायण आदि इन्हें गुरु मानते थे। ये प्राचीन कवि-परपरा के पडित तथा कवि दोनो थे। इनकी रसिकप्रिया तथा कविप्रिया पर की गई टीकाएँ अब भी अपना महत्त्व रखती हैं। बिहारी-सतसई तथा सूर के दृष्टकूटो पर भी इनकी टीकाएँ हैं। इन के रचित साहित्य-सरसी, व्यग्यविलास, षड्ऋतु, हनुमत-भूषण, तुलसी-भूषण, साहित्य-सुधाकर आदि अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

बाबा रघुनाथदास रामसनेही:—इन्होंने सवत् १९११ में विश्रामसागर नामक एक बृहत् ग्रन्थ दोहा-चौपाई के क्रम से बनाया जिसमें रामकृष्णादि अवतारों की कथाएँ बड़े विस्तार से वर्णित हैं। भक्तमंडली मे इस ग्रथ का अच्छा प्रचार है । ग्रंथ

पर तुलसीदास की रामायण का बहुत प्रभाव पड़ा है ।

ललितकिशोरी तथा ललितमाधुरी :—ये दोनों वैश्य-बन्धु लखनऊ के निवासी थे । पीछे इन्होंने वृन्दावन में साहजी का प्रसिद्ध मंदिर बनवाया और विरक्त होकर वहीं रहने लगे । इनकी उपासना माधुर्य भाव की थी । इनकी रचनाएँ बहुत ही सरस तथा स्निग्ध हुई हैं । इनकी भाषा में प्रान्तीय ब्रज की मिठास है । इनका कविताकाल संवत् १९१३ से १९३० तक है ।

राजा लक्ष्मणसिंह :—इनके नाम के साथ प्रयुक्त राजा पदवी इनकी राजभक्ति का प्रसाद थी । इन्होंने कालिदास के रघुवंश, मेघदूत तथा शकुन्तला नाटक के अनुवाद किये हैं । शकुन्तला नाटक का अनुवाद बहुत ही सुन्दर है । इसमें पद्यभाग का अनुवाद पद्य में किया गया है । गद्य का अनुवाद सरस खड़ी बोली में किया गया है । इस पुस्तक की देश-विदेश में बहुत प्रशंसा हुई थी । इनके पद्यानुवाद बहुत ही सरस हुए हैं, उनमें मौलिक रचनाओं का सा प्रवाह प्राप्त है ।

लछिराम ब्रह्मभट्ट :—इनका जन्म संवत् १९६८ में बस्ती जिले में हुआ था । ये अयोध्यानरेश द्विजदेव के आश्रय में बहुत दिन तक रहे थे । और भी अनेक राजाओं तथा धनियों के यहाँ ये रहे थे । अपने ग्रन्थों में इन्होंने अपने आश्रयदाताओं के गुणगान किये हैं । इनकी रचनाएँ रीतिकाल की शैली पर हैं । 'रावणेश्वर-कल्पतरु' ग्रन्थ काव्यांगों पर लिखा गया है । इनकी भाषा उतनी विशुद्ध नहीं हो पाई है । समस्यापूर्तियों के अखाड़ों में तथा रामलीलाओं के संवादों में इनकी रचनाएँ प्रायः सुनाई पड़ जाती हैं ।

गोविन्द गिल्लाभाई :—गुजरात के प्राचीन कवि ब्रजभाषा ही मे कविता किया करते थे। वैष्णव धर्म के प्रचार के साथ साथ ब्रजभाषा इस प्रान्त में पहुँच गई थी। गिल्लाभाई की रचनाओ से यह नहीं प्रतीत होता है कि ये किसी गुजराती की रचनाएँ हैं। इन्होंने छोटे छोटे अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। ये समस्यापूर्त्तियाँ भी किया करते थे। भूषण की रचनाओं का इन्होने एक सुन्दर सस्करण निकाला था। इनका जन्म सवत् १९०५ मे हुआ था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :—भारतेन्दु की कला का प्रकाश साहित्य के सधिकाल में हुआ। इन्होंने साहित्य में नवीनताओं की योजना भी की तथा प्राचीन काव्यपरपरा के सिद्धान्तों और विशेषताओं को बनाये भी रखा। इन्होंने अपनी कविता के लिये भाषा का एक विशुद्ध तथा सस्कृत रूप पकड़ा। रीतिकाल के कवियों द्वारा भाषा में जो उच्छृंखलता चल रही थी उसको इन्होने दूर कर दिया। इस दिशा में द्विजदेव तथा भारतेन्दुजी के प्रयत्न बहुत ही प्रशसनीय हैं। इनकी प्रतिभा ने अनेक क्षेत्रों में प्रकाश किया था। इनकी रसिकता दुरगी थी। वह सात्त्विक तथा राजस दोनो थी। सात्त्विक रसिकता साहित्य में भक्ति-भावना के रूप मे प्रकट हुई तथा राजस रसिकता शृंगारी स्निग्ध रचनाओं के रूप मे। इन दोनों प्रकार की रचनाओं में सच्ची अनुभूति लक्षित होती है। कवि की भावुकता एक ओर भगवान की छवि पर मुग्ध थी दूसरी ओर इस लोक में प्राप्त होने वाली छवि पर। इनकी भक्ति की कविताएँ कृष्ण-काव्य

का पूरा प्रतिनिधित्व करती हैं। शृंगारी रचनाओं में वियोग-जन्य विकलता का स्वर बहुत ही स्पष्ट सुनाई पड़ता है। स्वानुभूति के पुट से ऐसी कविताओं की मार्मिकता और भी बढ़ गयी है। इन्होंने जिन नवीन विषयों को लिया है उनमे देश-भक्ति का राग सबसे प्रबल है। इन रचनाओं में देश की दुर्दशा को देखकर छटपटाते हुए हृदय को हम साफ देख सकते हैं। समाज-सुधार की ओर भी इनका ध्यान गया था। इनकी कविताओं का एक सग्रह काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने अभी कुछ दिन हुए निकाला है।

पंडित अंबिकादत्त व्यास (संवत १९१५—१९५७):— ये संस्कृत के ऊँचे विद्वान् होते हुए भी हिन्दी के अनुरागी थे। सस्कृत मे इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इनकी आशु-कविता मे अच्छी गति थी। इसी से इन्हें घटिका-शतक की उपाधि मिली थी। इनकी रचनाएँ प्राचीन ढग को हुआ करती थीं; कभी कभी नवीन स्वर भी सुनाई पड़ जाता था। कसवध नामक अन्त्यानुप्रासरहित खड़ी बोली में एक काव्य भी लिखा था। इन्होने बिहारी के दोहो पर कुडलियाँ बनाई हैं। ये बिहारी-विहार के नाम से प्रकाशित हुई हैं।

बाबू राधाकृष्णदास:— ये भारतेन्दुजी के फुफेरे भाई थे। ये कवि, समालोचक, नाटककार, गद्यलेखक सब कुछ थे। इन्होंने रहीम के कुछ दोहों पर कुण्डलियाँ बनाई हैं। इनकी अन्य रचनाओं के विषय भक्ति तथा शृंगार थे। इनकी कुछ कृतियाँ 'राधाकृष्ण-ग्रन्थावली' नाम से निकली हैं।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र (संवत् १९१३-१९५१):— पद्य की अपेक्षा इनका गद्यक्षेत्र में अधिक महत्त्व है। ये कानपूर से 'ब्राह्मण' पत्र निकालते थे। भारतेन्दु जी पर इनकी बड़ी श्रद्धा थी। इनकी भाषा पर पश्चिमी अवधी का प्रभाव है। इनकी बुढ़ापा नामक रचना बहुत प्रसिद्ध है।

उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी (सवत् १९१२—१९८०):— ये उर्दू में भी रचनाएँ करते थे। हिन्दी में इनका उपनाम प्रेमघन था। 'आनन्दकादंबिनी' मासिक पत्रिका तथा 'नागरी नीरद' साप्ताहिक पत्र इन्हीं के संपादकत्व मे निकले थे। इनकी कविताओं के विषय प्राय' नवीन रहते थे। देश-भक्ति, हिन्दी-प्रचार, स्वदेशी आन्दोलन आदि पर इनका ध्यान बहुत रहता था। ये अपने समय की भावनाओं के प्रतिनिधि कवि थे।

ठाकुर जगमोहन सिंह (सवत् १९१४-१९५५)·— ये अनुरागी जीव थे। नवीन भावनाओं का इन पर बहुत कम प्रभाव पड़ा था इनकी प्रायः रचनाएँ शृङ्गारी हैं, पर उनमें लोकपक्ष शिथिल है। वे भक्ति के भीतर आने योग्य हैं। इनकी भाषा सरस तथा प्रवाहपूर्ण है। अलंकारो आदि की तड़क-भडक से अपने को बचाते हुए इनकी काव्यधारा बड़े सरल एव सरस प्रवाह से अग्रसर होती है। इनकी बहुत सी कविताएँ 'श्यामा-स्वप्न' में मिलती है, कुछ श्यामलता तथा प्रेमसंपत्तिलता में सगृहीत हैं।

लाला सीताराम बी. ए. (संवत १९१५ - १९९३):—

सरकारी नौकरी करते हुए भी ये सदा साहित्य-सेवा में लगे रहते थे। इन्होंने अँगरेजी तथा संस्कृत के अनेक नाटकों तथा काव्यों के अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। कालिदास के तीनों काव्यों रघुवंश, कुमारसम्भव तथा मेघदूत के अनुवाद बड़ी सफलता से किये हैं। शेक्सपियर के भी कई नाटकों के अनुवाद किये हैं। इनका हिन्दी-साहित्य का परिचय तथा अध्ययन विस्तृत तथा गम्भीर था। ब्रजभाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय:— इनका जन्म संवत् १९२२ में निजामाबाद में हुआ। ये आजकल हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं। ये प्रारभ मे ब्रजभाषा ही में कविता करते थे। उस क्षेत्र मे इनकी अच्छी प्रसिद्धि थी। जब से ये खड़ी बोली की ओर आये तब से इनकी ब्रजभाषा की रचनाओं को लोगों ने भुला ही सा दिया है। पुरानी ब्रजभाषा की रचनाएँ रसपद्धति के क्रम से 'रस-कलस' से रखी गई हैं। इस प्रकार यह रस-विवेचन पर एक सुन्दर पुस्तक हो गई है। प्रायः कवियों को कोई एक रस मँजा रहता है। ऐसे बहुत कम कवि होते हैं जो भिन्न भिन्न रसो की रचनाएँ एक ही सी शक्ति से कर सकें। उपाध्याय जी में यह विशेषता अच्छी मात्रा मे प्राप्त होती है। इनका कोई अपना रस या भाव-पद्धति नही है। इसी से ये कहीं पर भी बहुत ऊँचे नहीं उठ सके हैं, पर गम्भीरता न होते हुए भी इनमें विस्तार बहुत है। पुराने कवियों की परम्परा से ये भलीभाँति परिचित हैं। इसी से इनकी अनेक रचनाओं मे प्रायः परिचित

सी ध्वनि सुनाई पड़ती है। ऋतु-वर्णन पर इनकी रचनाएँ अच्छी बन पड़ी हैं। वे सेनापति का स्मरण दिलाती हैं। इनके दोहे भी साधारण नहीं हैं। वे बिहारी के दोहों को टक्कर के नहीं हैं, पर मतिराम के दोहों से पीछे भी नहीं पड़ते। देशानुराग, समाज-सुधार आदि उपाध्यायजी के प्रिय विषय हैं। रसकलस में इन्हे भी स्थान दिया गया है। इन्हीं नवीन विषयों को लक्ष्य में रखकर कवि ने कुछ नवीन प्रकार की नायिकाओं की उद्भावना की है। इनकी व्रजभाषा की रचनाएँ इन्हे मतिराम की कोटि में स्थान देती हैं।

पंडित श्रीधर पाठक (स० १९१६ से १९९५):— इनकी गणना खड़ी बोली के कवियों में की जाने लगी है। ये व्रजभाषा के पुराने उपासकों में थे। पर इनकी रचनाएँ समस्या-पूर्ति के ढग की नही हैं। प्रकृति के अनुरञ्जनकारी रूपों से भी ये प्रभावित होते थे। इनके प्राकृतिक वर्णनो में हिमालय-वर्णन, काश्मीर-वर्णन, तथा भिन्न भिन्न ऋतुओं के वर्णन मुख्य हैं। समाज की ओर भी इनका ध्यान रहता था। बालविधवा ऐसे विषयों पर भी इन्होंने रचनाएँ की हैं। देशभक्ति ऐसे विषय को भी इन्होने लिया है इन्होंने व्रजभाषा का नवीनतम रूप लिया है जो खडी बोली से बहुत दूर नहीं प्रतीत होता। अलकारों का इन्हे विशेष आग्रह नही था। भाषा स्वच्छ प्रवाह से युक्त है और एक सिद्धहस्त कवि के हाथों से बहुत ही संयत तथा परिमार्जित रूप मे प्रयुक्त हुई है। जैसी मिठास इनकी व्रज-भाषा मे है वैसी कम कवियों में प्राप्त होती है। इन्होंने व्रज-

भाषा में संस्कृत से ऋतु-सहार तथा अँगरेजी से डेजर्टेड विलेज के अनुवाद किये हैं। अँगरेजी के भावों को व्रजभाषा में लाना एक दुष्कर कार्य है पर इन्होंने इसे बड़ी सफलता से निबाहा है। इनके ऊजड़ ग्राम की बहुत प्रशसा हुई थी।

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (स० १९२३ से १९८९):—ये आधुनिक काल मे व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये हैं। इनकी रचनाओं को पढ़ कर हमें देव, बिहारी, पद्माकर आदि का स्मरण हो आता है। भाषा की दृष्टि से ये पद्माकर से मिलते-जुलते हैं तथा भावुकता की दृष्टि से घनानन्द से। इन्होंने अपनी भाषा का स्वरूप निश्चित कर लिया था। उसका निर्वाह सर्वत्र किया है। व्याकरण के नियमों का भी इन्होने सदा ध्यान रखा। इनकी भाषा बहुत ही संस्कृत, व्याकरणसम्मत, चुस्त तथा परिमार्जित हुई है। इनकी शृङ्गार रस की रचनाएँ प्राचीन कवियों के टक्कर की हैं। प्राचीनकाल के ऐसे कवियो में एक यह त्रुटि रहती थी कि वे अन्य रसों की ओर दृष्टिपात ही नही करते थे। रत्नाकर जी में यह विशेषता है कि इनका अनेक विरोधी रसो पर एक सा अधिकार है। हृदय के वास्तविक योग के बिना ये रचनाएँ नहीं करते थे। इनकी भक्तिरस की रचनाएँ भी सच्ची अनुभूति से पोषित हैं। वीररस की रचनाएँ वीराष्टकों में प्राप्त होती हैं। भीष्म पितामह ऐसे वीरो तथा शिवाजी, राणा प्रताप ऐसे वीर देशभक्तों की प्रशस्तियाँ कवि ने सच्चे वीरोल्लास से लिखी हैं। इस क्षेत्र में कवि भूषण से पीछे नही पड़ता। कवि का प्रकृति

के प्रति भी अनुराग था। इन्होंने ऋतुओं पर बड़े सफल अष्टक बनाये हैं। गंगावतरण, उद्धव-शतक, हरिश्चन्द्र ये इनके प्रवन्ध-काव्य हैं। इनके विषय नामों ही से प्रकट हैं। उद्धव-शतक का विषय वही प्राचीन है जिसे सूरदास, नन्ददास आदि वैष्णव कवियों ने इतने प्रेम से गाया है। पुराना विषय होने पर भी कवि इसमें बहुत सी नवीनताओं का समावेश करने में सफल हुआ है। इन्होंने विहारी-सतसई का एक बहुत ही प्रामाणिक सस्करण 'विहारी-रत्नाकर' नाम से निकाला था इधर ये सूरसागर का सम्पादन कर रहे थे। इनकी मृत्यु से यह कार्य अधूरा ही रह गया।

राय देवीप्रसाद पूर्ण (स० १९७१-१९७१):—इनका निवासस्थान कानपूर था। इनके यहाँ कवियों का दरबार लगा करता था। ये व्रजभापा के अनन्य अनुरागी थे। काव्यक्षेत्र में खड़ी बोली के प्रसार का इन्होंने विरोध किया था। पर पिछले दिनों में यह विरोध बहुत कुछ शान्त हो गया था। फिर तो इन्होंने स्वय खड़ी बोली में रचनाएँ कीं। इनकी व्रजभापा की कविताओं के विषय शृगार, भक्ति, वेदान्त, ऋतुवर्णन आदि हैं। नवीन ढग की रचनाओं में, जो प्राय' खड़ी बोली में है, समाज-सुधार, स्वदेशी वस्तु-प्रसार तथा देशभक्ति ऐसे विषय भी आये हैं। वेदान्त की ओर इनका अधिक झुकाव था। पूर्णजी के ऋतुवर्णन परपरा-पालन की दृष्टि से नहीं किये गये हैं, उनमें हृदय का सच्चा योग मिलता है। ये ऋतुवर्णन सेनापति की शैली पर हैं। इनका भाषा के एक सुन्दर शिष्टरूप पर

अधिकार था । अनेक स्थानों पर कवि की कल्पनाएँ बहुत ही सुन्दर हुई हैं। 'चन्द्रकला भानुकुमार' नामक नाटक भी इन्हीं का लिखा है। अभिनय तथा चरित्रचित्रण की दृष्टि से इसे सफलता नही मिली है। इसमे आई हुई कविताएँ अवश्य सुन्दर हुई हैं।

पंडित रामचन्द्र शुक्ल:—इनका जन्म सं० १९४१ में हुआ था। आजकल ये हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रधान आचार्य हैं। इन्होंने अँगरेजी से 'लाइट आफ एशिया' (Light of Asia) का बुद्धचरित नाम से व्रजभाषा में अनुवाद किया है। इसमे मूल के भावों की बड़ी सचाई से रक्षा की गई है। इतनी सामर्थ्य तथा सफलता से हिन्दी में बहुत कम अनुवाद किये गये हैं। हिन्दी के कुछ भोले इतिहास-लेखकों तथा आलोचकों ने यह घोषणा की है कि यह अनुवाद अवधी भाषा मे किया गया है। जो बेचारे व्रजभाषा के स्वरूप से इतने अपरिचित हैं उनसे बुरा मानकर ही हम क्यों परेशान हों। आपकी फुटकल रचनाएँ अभी संगृहीत नहीं हुई हैं। वे पुरानी पत्रिकाओं में इधर-उधर पड़ी हैं। उनमे बहुत सी रचनाएँ बहुत ही कोमल भावों की व्यंजना करती हैं। आपकी भाषा शुद्ध तथा साहित्यिक है। भाषा के स्वरूप का आपको बहुत अच्छा ज्ञान है। आपने भाषा के बहुत ही पिछले स्वरूप को अपनाया है। आपकी रचनाओं में प्रदर्शन की रुचि कहीं नहीं है।

पंडित सत्यनारायण कविरत्न (सं० १९४१–१९७५):—ये व्रजमंडल के निवासी होने के नाते व्रजभाषा के प्रान्तीय

स्वरूप से परिचित थे। इनकी भाषा में स्वाभाविक मिठास है। नवीन शिक्षा मे दीक्षित होते हुए भी ये पुराने ढग के मनुष्य थे। इनके ग्रामीण वेश को देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि ये अँगरेजी पढ़े लिखे भी थे। भाषा भी प्रायः ग्रामीण ही बोला करते थे। ये कृष्ण के भक्त थे। इनकी प्रायः रचनाएँ भक्तिरस की हैं। कुछ रचनाओं में इनके दु:खपूर्ण घरेलू जीवन की झलक भी मिलती है। इनका कविता पढ़ने का ढग बड़ा मनोहर था। इन्होंने भवभूति के दो नाटकों—मालती-माधव तथा उत्तररामचरित—के अनुवाद किये थे। अनुवादों में मूल के भावो की अच्छी रक्षा हुई है पर मूल के भावो के निर्वाह का अधिक ध्यान रखने के कारण भाषा में कुछ क्लिष्टता तथा अस्पष्टता आ गई है।

श्री वियोगी हरिजी (जन्म सं० १९५३—वर्तमान) :— ये इस काल के ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इधर कुछ दिनों से ये काव्यक्षेत्र से कुछ विरत से हैं। अछूतोद्धार आदि समाज-सुधार के कामों में बड़े अनुराग से लगे हुए हैं। हरि की उपासना हरिजनों की उपासना में प्रकट हुई है। इनकी भक्ति की रचनाएँ उसी शैली की हैं जिस शैली की पुराने भक्तों की। उनमें वही अनुराग तथा तल्लीनता मिलती है। आपकी अनेक भक्ति की रचनाओं में शृगार का पुट है, इन रचनाओ को माधुर्य भाव के भीतर ले सकते हैं। इनमें प्रेम की बड़ी मार्मिक व्यजना हुई है। किसी ऐसे के इश्क में आप व्याकुल रहते हैं जो इन ऑखो ससार में नही दिखाई पड़ता। पर आपके लिए वही

सत्य है, वही जीवन है। अपनी वीर-सतसई में आपने उत्साह की अच्छी व्यंजना की है। आपने पुस्तक में वीररस को उतने ही व्यापक अर्थ में लिया है जितने में संस्कृत के आचार्य उसे लेते आये हैं। इस काव्य में अनेक वीरों तथा समाज-सुधारकों की प्रशस्तियाँ हैं। अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है।

आधुनिक काल—खड़ी बोली

प्रस्तावना

व्रजभूमि के आसपास बोली जानेवाली भाषा में सर्वप्रथम काव्यरचना प्रारम्भ हुई थी। क्रमश' इस भाषा को साहित्यिक महत्त्व प्राप्त होता गया तथा दूर के देशों में इसने अपना विस्तार किया। मुसलमानो ने जब हिन्दी में कविता की तो इसी भाषा को अपनाया। हाँ, जायसी आदि कुछ कवियों ने अवश्य अवधी में लिखा। खुसरो ने दिल्ली के आसपास की बोली में अवश्य कुछ रचनाएँ की थीं। यह बोली खड़ी थी जो अपने प्रान्त में शताब्दियों पहले से व्यवहृत होती आई होगी। प्राचीन अपभ्रंशों के जो उदाहरण प्राप्त हुए हैं उनमे अनेक का झुकाव खड़ी बोली की ओर भी है। विक्रम की बारहवीं शताब्दी के अन्त में होने वाले हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में जो उदाहरण दिये हैं उनमें खड़ी बोली के प्रारम्भिक रूप का आभास देखा जा सकता है। ये सब उदाहरण स्वय हेमचन्द्र के बनाये नहीं हैं। इनमें से कुछ शताब्दियों पहले के हैं। ऐसी स्थिति में हम कह सकते हैं कि प्राय: विक्रम की दसवीं शताब्दी के आसपास खड़ी बोली का भी अपने प्रान्त के अपभ्रश से विकास प्रारम्भ हो गया था। हेमचन्द्र से एक उदाहरण देखिये.—

> भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कतु।
> लज्जेजतु वयसिअह जइ भग्गा घर एतु॥

इस उदाहरण में खड़ी बोली की आकारान्त प्रवृत्ति स्पष्ट देखी जा सकती है। बीसलदेव रासो (सं० १२१२) में भी खड़ी बोली के कुछ उदाहरण मिल जाते हैं, देखिए:—

१ मोती का आषा किया।

२ दीधा ताजी उत्तिम ठाई।

३ चित फाट्या मन उचट्या।

इसी शताब्दी में खुसरो की कविता मे खड़ी बोली ने यह विकसित रूप प्राप्त कर लिया है:—

जल का उपजा जल में रहै।
आँखों देखा खुसरो कहै॥

कबीर की रचनाओं में तो खडी बोली का अच्छी तरह प्रयोग पाया जाता है:—

ना कुछ किया न करि सक्या, नां करणें जोग सरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, तार्थे भया कबीर॥

अकबर के समय के कवि बनारसीदास ने अपने जीवन-चरित्र में अनेक स्थानों पर इस बोली का प्रयोग किया है। भूषण की शिवाबावनी मे भी अनेक उदाहरण प्राप्त हैं। इसके पश्चात् सीतल, रघुनाथ (१८००), सूदन, ग्वाल आदि अनेक कवियों ने स्थान स्थान पर इसका प्रयोग कर दिया है।

इस प्रकार अपना अस्तित्व बनाये रखने भर को कभी कभी झाँक लेने पर भी यह बोली बहुत दिनो तक साहित्य के खुले मैदान में न आ सकी। मुसलमानों ने जब पजाव आदि प्रान्तों को जीतकर दिल्ली में डेरा डाला तो उन्हें चारों ओर यही बोली

सुनाई पड़ी। उन्होंने इसी को अपना कर भावविनिमय का कार्य प्रारम्भ किया। उनके संसर्ग से इसमें विदेशी शब्द भी आने लगे। पर उस समय मुसलमानों को विदेशी शब्दों से इसे भर देने का आग्रह न था। उस समय के मुसलमान कवियों की रचनाओं में देशी शब्दों की मिठास अछूती है। इस प्रकार मुसलमान फौजों के शिविर (उर्दू) में जन्म लेकर यह बोली महत्त्व प्राप्त करने लगी। अपने उर्दू नाम से अब यह ख्यात हुई। मुसलमानों के साथ लगी लगी यह दूर दूर के सफर भी करने लगी। पूर्वी अवध, बिहार आदि प्रान्तों की ओर भी यह खिसकने लगी। घोर दक्षिण में भी मुसलमानों की कृपा से इसने अपना उपनिवेश बसाया। वहाँ यह दक्खिनी कहलाई। रेखता, हिन्दवी आदि भी इसके नाम पड़े। उर्दू-साहित्य के विकास के साथ साथ यह मँजने सुधरने लगी। राज्य द्वारा गृहीत होने के कारण इसका महत्त्व भी बढ़ चला। बाजारों में सर्वत्र इसी का बोलबाला हुआ। अँगरेजी राज्य के प्रारम्भ होने के पहले यह उत्तरापथ में अच्छी तरह फैल चुकी। मुगल राज्य के पतनकाल की कुछ परिस्थितियों ने इसे सुदूर पूर्व में फैला दिया। उस समय दिल्ली अव्यवस्था का केन्द्र हो रही थी। धीरे धीरे खत्री, बनिया आदि व्यापारी जातियाँ इस परिस्थिति से ऊब कर पूर्व की ओर बढ़ रही थीं। पूर्व की ओर से अँगरेजी राज्य बढ़ा चला आ रहा था। इस नवीन राज्य में व्यापारियों को अधिक सुविधाएँ थीं। फलस्वरूप पछाँह के व्यापारी नगर उजड़ने लगे और पूर्व में व्यापार के केन्द्र स्थापित होने लगे। इन व्यापारियों के साथ

साथ खड़ी बोली भी लगी चलती थी। धीरे धीरे बहुत पूर्वी प्रान्तो की हाटों में भी यह सुनाई पड़ने लगी। यह है खड़ी बोली के प्राचीन इतिहास का इतिवृत्त।

अँगरेजों को भी अपना व्यापार तथा राज्य चलाने के लिये देशी भाषा की आवश्यकता थी। मुसलमानी दरबारों में फारसी सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी तथा हिन्दू इतने दिन की विपत्तियाँ झेल कर भी अपनी सस्कृत का मोह न छोड़ सके। प्रारम्भ मे अँगरेजो ने भी अरबी फारसी के मदरसों तथा सस्कृत की पाठशालाओ को आर्थिक सहायता देना प्रारम्भ किया। पर उन्हे यह शीघ्र ही पता चल गया कि इन भाषाओं से उनकी इष्टसिद्धि न हो सकेगी। सवत् १८८३ मे लार्ड विलियम वेटिक के समय मे मेकाले ने अँगरेजी भाषा के प्रचार का बहुत ही जोरो के साथ समर्थन किया। संस्कृत आदि भाषाओं की उसने बड़ी निन्दा की और कहा कि जब तक भारत में अँगरेजी शिक्षा का प्रचार न होगा तब तक भारतवर्ष में अँगरेजों के प्रति सहानुभूति नहीं हो सकती। इसका फल यह हुआ कि अँगरेजी राजभाषा मानी गई और उसका प्रचार प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार दरबारी काम तो चलने लगा। पर साधारण जनता के सपर्क में आने के लिये अभी एक देशी भाषा की आवश्यकता बनी थी। मुसलमानों के द्वारा उर्दू का व्यवहार होते देखकर अँगरेजों ने भी उसे ही आश्रय दिया। पर अँगरेजों को यह भ्रम नहीं हुआ था कि उर्दू देश की स्वाभाविक सामान्य भाषा है क्योंकि इसाई प्रचारकों ने उर्दू को न अपना कर हिन्दी के ही द्वारा अपना प्रचार प्रारम्भ किया।

दरबारों मे अँगरेजी को महत्त्व देने का कारण राजनीतिक था।

हमारा प्राचीन साहित्य पद्यमय ही है। प्राचीनकाल के गद्य के कुछ उदाहरण मिल अवश्य जाते हैं, पर गद्य के विकास की कोई अटूट धारा उस समय नहीं मिलती। गोरखनाथ की लिखी कुछ पुस्तकों का उल्लेख हुआ है। गोरखनाथ का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। इन पुस्तकों में प्राप्त गद्य का कोई व्यवस्थित रूप नहीं है। व्रजभाषा से प्रभावित हो कर अनेक प्रान्तों की पदावली लेकर यह गद्य चला है। इसके बाद विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी मे गोस्वामी गोकुल-नाथ जी की लिखी व्रजभाषा की दो पुस्तकें 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता' प्राप्त हुई हैं। उस समय की अनेक टीकाओं में भी गद्य का प्रयोग हुआ। टीकाओं का यह गद्य बहुत ही अव्यवस्थित होता था। इसका समझना मूल से भी अधिक क्लिष्ट पड़ता है।

इस प्रकार गद्यक्षेत्र में व्रजभाषा का कोई पुष्ट स्वरूप न होने से खड़ी बोली बेखटके ग्रहण कर ली गई। साम्राज्य की स्थापना के साथ ही साथ अँगरेजी व्यवहार के लिए उप-योगी नहीं हो सकती थी। जान गिलक्राइस्ट ने स० १८६० के आस-पास देशी भाषा की पुस्तकें प्रस्तुत करने की योजना की। इनके आश्रय मे लल्लूजी लाल ने प्रेमसागर तथा सदल मिश्र ने नासिकेतोपाख्यान लिखा। इन लोगों से कुछ पहले ही सैयद इंशा अल्ला खाँ 'रानी केतकी की कहानी' खड़ी बोली के गद्य में प्रस्तुत कर चुके थे। मुशी सदासुखलाल ने भी पुराणो के कुछ

अंशों के अनुवाद प्रस्तुत किये थे। इस प्रकार इस प्रारंभिक काल में गद्य के चार लेखक सामने आते हैं—मुंशी सदासुखलाल इंशा अल्लाखाँ, लल्लूजी लाल तथा सदल मिश्र। सदासुखलाल तथा खाँ साहब ने अपनी रचनाएँ स्वान्तःसुखाय की थीं। मुंशीजी भगवद्भक्त थे तथा खाँ साहब एक मौजी लेखक और कवि। खाँ साहब ने अपनी पुस्तक से विदेशी शब्दों को अलग रखने की प्रतिज्ञा कर ली थी। उनकी भाषा में प्रायः तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा को मुहावरों आदि से अलंकृत करने की ओर इनका अधिक ध्यान था। जैसा इनका विषय है वैसी ही इनकी भाषा है। इनकी भाषा अठखेलियाँ करती हुई अग्रसर होती है। सदल मिश्र ने सं० १८६० में नासिकेतोपाख्यान प्रस्तुत किया। यह संस्कृत की एक पुस्तक का अनुवाद मात्र है। इनकी भाषा प्रेमसागर की भाषा की अपेक्षा खड़ी बोली के ढाँचे के अधिक अनुरूप हुई है। फिर भी कहीं-कहीं पर बिहारी तथा ब्रजभाषा का प्रभाव पड़ा है। पूर्वकालिक क्रियाओं तथा बहुवचन के रूप भी ब्रजभाषा के अनुसार प्रयुक्त हैं। पूर्वी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

प्रेमसागर की भाषा उसी प्रकार की है जिस प्रकार की मथुरा के आस-पास के कथावाचकों की कथक्कड़ी भाषा होती है। यह एक प्रकार से खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा के बीच की भाषा है। पूर्वकालिक क्रियाओं के रूप, संज्ञाओं के बहुवचन, संकेतवाचक सर्वनामों के रूप सब ब्रजभाषा के ही अनुरूप हुए हैं।

इस समय गद्य की प्रतिष्ठा अवश्य हो गई पर राजा लक्ष्मण सिंह तथा राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के समय तक कोई भी लेखक साहित्यक्षेत्र मे नही आया। जान गिलक्राइस्ट (स० १८६०) के समय से वलवे के समय तक (सं० १९१४) गद्यक्षेत्र एक प्रकार से सूना ही पड़ा है। पर गद्य की जो प्रतिष्ठा हुई उसका लाभ ईसाई धर्मप्रचारक उठाते रहे। उन्होने वाइबिल के अनुवाद प्रस्तुत किये, खडन-मडन की पुस्तकें लिखी, पाठ्यपुस्तकें प्रस्तुत करवाई। ईसाई धर्मपुस्तको के अनुवादो की भाषा में वाक्यो का सगठन कुछ शिथिल तथा विचित्र सा होता था, पर पदावली सदा सस्कृतगर्भित रहती थी। साथ मे ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग कर दिया जाता था। इन ईसाई प्रचारकों का विरोध करने के लिये देश में अनेक नेता उठ खड़े हुए। स्वामी दयानन्दजी ने स० १९३२ में आर्यसमाज की स्थापना की। इसके पश्चात् गुजरात, युक्तप्रान्त तथा पजाव में आर्यसमाज का प्रचार आरभ हुआ। स्वामजी ने अपने ग्रन्थ 'आर्यभाषा' में ही लिखे हैं। इनकी भाषा पण्डिताऊपन लिए हुए है। उसमें एक गम्भीरता, तर्कपद्धति तथा उत्साह है। ये सस्कृत-शब्दो का प्रयोग तत्समरूप मे ही करते थे। आर्यसमाजियों ने हिन्दी-प्रचार में बहुत योग दिया। सुदूर पजाब मे भी हिन्दी का प्रवेश हो गया। आर्यसमाजियो का विरोध करने के लिये भी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इस विरोधी आन्दोलन के द्वारा भी हिन्दी को लाभ पहुँचा। उस समय पजाव में दो विशेष व्यक्तियो ने हिन्दी-प्रचार मे योग दिया। एक थे प० श्रद्धाराम

जो आर्यसमाजियों का विरोध करने को सामने आये थे और दूसरे नवीनचन्द्र राय जो ब्रह्मसमाजी सुधारक के रूप में सामने आये। श्रद्धाराम ने 'सत्यामृत-प्रवाह' नामक एक सुन्दर पुस्तक बहुत ही समर्थ भाषा में लिखी जिसमें प्रश्नोत्तर क्रम से अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया। इनकी भाषा में हम एक प्रकार की प्रौढ़ता तथा परिष्कार पाते हैं। भाषा पर पंजाब प्रान्त की भी कुछ झलक है। इन्होंने अपना जीवन-चरित्र तथा भागवती नाम की स्त्री-शिक्षा-विषयक पुस्तक भी लिखी थी। नवीनचन्द्र राय ने 'विधवा-विवाह-मीमांसा' आदि अनेक पुस्तकें स्वयं लिखी तथा दूसरो को लिखने को प्रोत्साहित भी किया।

इधर युक्तप्रान्त में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द तथा राजा लक्ष्मणसिंह हिन्दी के लिये काम कर रहे थे। शिवप्रसाद को हम स० १६०० के आसपास सामने पाते हैं। स० १९१३ मे इनकी नियुक्ति इस्पेक्टर के पद पर हुई। इस समय से इनके प्रयत्नों मे अधिक प्रौढ़ता तथा शक्ति आई। इन्होंने राजा भोज का सपना, मानव-धर्मसार आदि पुस्तकों में बड़ी सुन्दर भाषा का प्रयोग किया है। पर आगे चलकर कुछ कारणों के वश इन्हें अपना मत बदल देना पड़ा और ये विदेशी पदावली से लदी, उर्दूमय, पर नागरी अक्षरों मे लिखी हुई भाषा के पक्षपाती हो गये। ये हृदय से हिन्दी के पक्षपाती अवश्य थे पर अपनी परिस्थितियो से लाचार थे। इन्होंने एक स्थान पर इस बात की ओर सकेत किया है कि यदि हिन्दू

अपने को उर्दू से अलग रखेंगे तो उन्हें लौकिक दृष्टि से हानि उठानी पड़ेगी क्योंकि कचहरियो आदि में उर्दू का ही बोलबाला था तथा कचहरियों से हिन्दू-जनता को भी काम पड़ता रहता था। अपनी इसी नीति पर ये अपने 'बनारस' अखबार में चले।

इधर शिवप्रसाद जी उर्दू हिन्दी को मिलाने का उद्योग कर रहे थे उधर आगरे मे राजा लक्ष्मणसिंह 'उर्दू हिन्दी दो बोली न्यारी न्यारी हैं' की घोषणा कर शुद्ध हिन्दी के प्रचार में योग दे रहे थे। सवत् १९१९ में लक्ष्मणसिंह ने कालिदास के शकुन्तला नाटक का अनुवाद प्रस्तुत किया जिसकी भाषा बहुत ही मीठी तथा घरेलू है। इस पुस्तक की बडी धूम हुई और यह सिविल सर्विस की पाठ्यपुस्तक बनाई गई। काशी के राजा शिवप्रसादजी ने भी इस अनुवाद को बड़ी प्रशसा की।

इस प्रकार हिन्दी के स्वरूप के लिये भिन्न भिन्न प्रस्ताव हो रहे थे। हिन्दी का कोई सर्वमान्य स्वरूप स्थिर नहीं हो पा रहा था। इस कार्य की पूर्ति भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने की। इन्हीं के समय से आधुनिक काल का प्रारभ माना जा सकता है। यदि निश्चित तिथि देनी हो तो हम कह सकते हैं कि संवत् १९२५ से जिस वर्ष 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन प्रारभ हुआ आधुनिक काल चला। हरिश्चन्द्र जी के समय से लेकर सरस्वती के प्रकाशन के समय तक हम आधुनिक काल का प्रारभिक काल मान सकते हैं। इस काल मे गद्य की भाषा खड़ी बोली हुई। पद्य में व्रजभाषा ही का बोलबाला रहा।

प्रारंभिक काल के अन्तिम दिनों में लोगों को यह बात खटकने लगी कि गद्य और पद्य दो भिन्न भिन्न भाषाओं मे लिखे जायँ। खड़ी बोली के पक्ष में आन्दोलन उठा जो दिन पर दिन जोर पकड़ता गया। इसके बाद आधुनिक काल का मध्यकाल आता है। यह नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना, सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन तथा पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी के सपादक रूप में सामने आने से प्रारभ होता है। इस काल में व्रजभाषा सामने से हटने लगी तथा खड़ी बोली काव्यक्षेत्र मे आसन जमाने लगी। द्विवेदीजी के साहित्य-क्षेत्र से हटने के पहले ही नवीन काल प्रारंभ हो जाता है। इस काल में प्राचीनता के प्रति विरोध प्रारंभ हुआ और गद्य तथा पद्य दोनों मे भावों को प्रधानता दी जाने लगी। हमारा काल-विभाग इस प्रकार है:—

आधुनिक काल

प्रारभिक काल (अथवा हरिश्चन्द्र काल) संवत् १९२४ से १९६० तक।

मध्य काल (अथवा द्विवेदी काल) संवत् १९६० से १९७५ तक।

नवीन काल संवत् १९७५ से १९९५ तक।

खड़ी बोली—प्रारंभिक काल–१

(संवत् १९२४ से १९६० तक)

गद्य

गद्य की अनेक शैलियों के प्रस्ताव हो चुके थे । अब आवश्यकता इस बात की थी कि किसी एक शैली को ग्रहण कर साहित्य-रचना का काम आगे बढ़ाया जाय । इस आवश्यकता की पूर्ति काशी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने की । ये राजा लक्ष्मणसिंहजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से अधिक प्रभावित थे । इन्हें मिली-जुली भाषाशैली ग्राह्य नहीं थी । फिर भी ये विदेशी शब्दों के पूर्ण बहिष्कार के पक्ष में नहीं थे। जो विदेशी शब्द बहुत दिनों से हमारी भाषा में प्रयुक्त होते चले आते थे तथा हमारी भाषा की प्रकृति से मेल खा। थे उनका इन्होंने बराबर प्रयोग किया है । इन शब्दो को शुद्ध मौलिक रूप में लिखने के फेर में ये नहीं पड़े । देशी शब्दों में भी इन्होंने इसी नीति से काम लिया । सस्कृत के जो शब्द तद्भव रूप में प्रयुक्त होते चले आते थे उन्हें इन्होने उसी रूप में ग्रहण किया है । छिपाव, झूँझल, पचड़ा ऐसे घरेलू शब्दो के प्रयोग से इनकी भाषा परिचित सी लगती है । तात्पर्य यह कि इन्होंने भाषा को सामान्य व्यवहार और परिचय की भूमि से हटाने का कभी प्रयत्न नही किया । इसी भूमि पर स्थित रखते हुए भी उसे साहित्य की उच्च उड़ान की ओर उन्मुख किया । भाषा में कला लाने के लिये, उसे सजाने के लिये

मुहावरों के समुचित प्रयोग की ओर इनका सदा ध्यान रहा। मुहावरो की योजना मे प्रदर्शन की प्रेरणा नहीं है, आवश्यकता की है। इनके द्वारा भाषा बहुत ही स्वाभाविक तथा मत्त गति से चली है। आवश्यकतानुसार इनकी भाषा अनेक रँग-रूप पकड लेती थी। साहित्यिक विषयों में इनकी भाषा कभी प्रलाप के ढग से चली है, कभी भावावेश की शैली पर। इनकी भावावेश की शैली अधिक प्यारी लगती है। इसमें वाक्य छोटे छोटे तथा गठे होते हैं। प्रवाह कुछ मन्द होता है। शब्द अधिक घरेलू तथा परिचित रहते हैं। गंभीर विषयों का प्रतिपादन करते समय ये संस्कृत-शब्दो का कुछ अधिक प्रयोग करते थे। इन्होंने अपनी भाषा मे अपनेपन की सदा रक्षा की है।

भारतेन्दु ने जिस मध्यम वर्ग की ओर सकेत किया उसकी ओर अधिक लोग आकृष्ट होने लगे। साहित्यिकों का एक दल प्रस्तुत हो गया जो बड़े उत्साह से साहित्य-रचना में लगा। सबने भारतेन्दु को साहित्यिक नेता के रूप मे स्वीकार किया। भारतेन्दु द्वारा हिन्दी की उन्नति और प्रचार के लिये किये गये त्याग से लोग और भी प्रभावित हुए। इस समय के प्रमुख लेखकों में पं० बदरीनारायण चौधरी, पं० बाल-कृष्ण भट्ट, पं० अंबिकादत्त व्यास, पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० राधाचरण गोस्वामी, तथा दिल्ली के लाला श्री निवासदास मुख्य हैं।

हमारे दुर्भाग्य से भारतेन्दुजी का निधन थोड़े ही दिनो में हो गया पर उनकी आत्मा तथा आदर्श साहित्यिक क्षेत्र में बहुत

दिनों तक अपना काम करते रहे। हिन्दी भाषा का एक सर्व-मान्य स्वरूप खड़ा कर देने का श्रेय भारतेन्दु और उनके साथियों को ही है। इन सब लेखकों की रचनाओं मे हम प्रथम यौवन का सा उल्लास पाते हैं। जिस प्रकार नवीन धर्म को पाकर जनता बड़े आवेश में उसके प्रचार के लिये आगे बढ़ती है उसी प्रकार मातृभाषा की भावना ने इन सब लेखकों में अद्भुत स्फूर्ति भर दी थी। यद्यपि इनकी भाषा मे उतनी प्रौढ़ता नहीं आ पाई थी जितनी हम आजकल के गद्य में पाते हैं, पर उसका विकास अपने ढंग से प्रारभ हो गया था। वे लेखक हिन्दी की स्वतन्त्र प्रकृति को पहचानते थे तथा उसे अक्षुराण रखने के लिये सदा तत्पर तथा सतर्क रहते थे। अब हम इन लेखकों की भाषा का कुछ अधिक परिचय प्राप्त करलें।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र :— ये भारतेन्दु को अपना नेता मानते थे तथा उन पर अनन्य श्रद्धा रखते थे। दोनों के राजनीतिक सिद्धान्त भी मिलते थे। मिश्रजी कांग्रेस तथा समाज-सुधार के लिये सदा आन्दोलन करते रहे। ये कानपुर से 'ब्राह्मण' पत्र निकालते थे, जिसके हास्य रस के लेखों को पुराने पाठक अब तक न भूले होंगे। इनकी भाषाशैली अक्खड़, स्वच्छन्द तथा कुछ मनमानी है। पर उसमें हम एक शक्ति और सामर्थ्य का सदा दर्शन करते हैं। इस भाषा मे हम एक प्रभविष्णुता तथा प्रभाव पाते हैं। इनकी भाषा में प्रान्तीय प्रयोगों का पुट भी मिला रहता है। बैसवाडे के शब्दों

तथा कहावतों का ये मनमाना प्रयोग कर दिया करते थे। मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग इनकी भाषा की विशेषता है। गभीर विषयों पर लिखते समय ये कुछ गभीर तथा संयत होना चाहते थे पर इनकी विनोदी प्रकृति इनका साथ नहीं छोड़ती थी। इनके ब्राह्मण पत्र में हास्य-विनोद, देशभक्ति, देशी कपड़ा, मातृभाषा-महत्त्व आदि अनेक विषयों के लेख निकला करते थे।

पंडित बालकृष्ण भट्ट:—इन्होंने सवत १९३३ में हिन्दी-प्रदीप निकाला था। इनमे भी विनोद की मात्रा मिलती है पर अधिक गभीर तथा संयत रूप मे। इनका झुकाव अलकारों की ओर अधिक है। इनका चन्द्रोदय नामक लेख तो अलकारों ही से भरा हुआ है। इनके लेखों मे हम अनेक शैलियाँ पाते हैं। साधरण विषयों पर लिखते समय उर्दू की ओर कुछ अधिक झुकाव हो जाता है, गंभीर विषयों में संस्कृत-पदावली का प्रयोग बढ़ने लगा है। इनका सस्कृत भाषा का परिचय अच्छा था, फलस्वरूप इनकी भाषा में एक परिमार्जन का रूप सर्वत्र लक्षित होता है। मुहावरों का प्रयोग इन्होंने उस समय के सब लेखकों से अधिक किया है। इनकी मिश्रित शैली में विदेशी शब्दों की मात्रा बहुत बढ़ जाती थी।

पंडित बदरीनारायण 'प्रेमघन'—ये आनन्दकादम्बिनी पत्र लेकर सामने आये थे। इनकी भाषा में हम सर्वत्र कृत्रिमता पाते हैं। ये शब्दमैत्री का ध्यान रख कर लिखा करते थे। कहीं कही वाक्यो की तुक मिलाने का भी प्रयत्न किया गया है।

इनकी भाषा बहुत लदी हुई तथा भारी पड़ती है। उसमे गति तथा प्रवाह नहीं है। वह अपनी चटक-मटक दिखाने ही में लगी रहती है। भारत-सौभाग्य नाटक मे उर्दू-मिश्रित भाषा का प्रदर्शन किया गया है। आनन्दकादम्बिनी के समाचार तक कभी कभी अनुप्रासयुक्त भाषा मे निकला करते थे।

लाला श्रीनिवासदास:—दिल्लीनिवासी ये लाला जी मातृभाषा के बड़े भक्त थे। ये अपने तीन नाटकों के लिये प्रसिद्ध हैं। परीक्षा गुरु नामक इनका एक उपन्यास भी है। परीक्षा गुरु की भाषा पर दिल्ली की स्थानीय बोली का प्रभाव पड़ा है। दिल्लीवालों के उच्चारण के अनुरूप भी बहुत से प्रयोग हैं। अपने नाटकों मे सम्मानित पात्रों के द्वारा जिस भाषा का प्रयोग कराया है उसे हम लाला जी की भाषा का आदर्श रूप मान सकते हैं। मुहावरों के समुचित तथा मात्रा के भीतर सीमित प्रयोग से भाषा निखर आई है। उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। भाषा में कुछ प्रान्तीयपन तो अवश्य आ गया है पर इससे भी भाषा की मिठास बढ़ी है।

ठाकुर जगमोहनसिंह:—विजय राघवगढ़ के ये ठाकुर साहब अपने अध्ययन के लिये काशी आये थे जहाँ इनका भारतेन्दु जी से सम्पर्क हुआ। इसका इनके गद्य तथा पद्य पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अपने श्यामास्वप्न नामक उपन्यास मे इन्होंने बड़ी सुन्दर भाषा का स्वरूप उपस्थित किया है। ये अलंकारों आदि से भाषा को सजाया भी करते थे। इनके वाक्य

इसके संचालक राजा रामपालसिंह बड़े हिन्दीप्रेमी थे। यह पत्र पीछे से हिन्दुस्तान से निकलता रहा। संवत् १९४७ में कलकत्ते से हिन्दी वगवासी निकला। इस पत्र ने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की तथा इसके ग्राहकों की संख्या हज़ारों तक पहुँची थी। सवत् १९५२ में बबई से वेंकटेश्वर-समाचार का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। ये दोनों पत्र इस समय भी चले जा रहे हैं।

नाटक तथा उपन्यास

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली, सत्यहरिश्चन्द्र, अंधेरनगरी, नीलदेवी, चद्रावली आदि अनेक छोटे बड़े नाटकों की रचना की। इनमें से नील-देवी को छोड़ प्रायः नाटक पौराणिक हैं जिनमे सत्यहरिश्चन्द्र बहुत प्रसिद्ध हुआ। अंधेरनगरी एक प्रहसन है। भारतेन्दुजी ने अपने बड़े नाटकों मे प्रस्तावना की सदा योजना की है। लाला श्री निवासदास ने 'रणधीर प्रेममोहिनी', 'सयोगिता स्वयंवर', 'तप्तासवरण' इन तीन नाटकों की रचना की। प्रेममोहिनी में प्रस्तावना रखी गई है। इसमें एक प्रहसन भी आता है। प० अबिकादत्त व्यास ने भी कई नाटक लिखे जो अधिक प्रसिद्ध नहीं हुए। पं० बदरीनारायण चौधरी का भारत-सौभाग्य नाटक इतने डीलडौल का हो गया है कि खेला नहीं जा सकता। भारतेन्दुजी ने संस्कृत तथा बगला से अनेक नाटकों के अनुवाद भी प्रस्तुत किये। इनमे मुद्रराक्षस का अनुवाद बहुत पसन्द किया गया।

उपन्यास-क्षेत्र में इस समय अधिक काम नहीं हुआ। 'रानी केतकी' को हम पहला उपन्यास मान सकते हैं। इसके पश्चात् श्री निवासदास का परीक्षागुरु सामने आता है जिसका विषय इसी लोक का है तथा जिसमें चरित्र-विकास पर भी ध्यान रखा गया है। ठाकुर जगमोहनसिंह का श्यामा स्वप्न भी उपन्यास ही कहलावेगा। प० बालकृष्णभट्ट ने 'सौ अजान एक सुजान' तथा 'नूतन ब्रह्मचारी' दो उपन्यास लिखे। प० अम्बिकादत्त व्यास का आश्चर्य-वृत्तान्त भी मनबहलाव की वस्तु है। इस समय बगला से भी कुछ अनुवाद हुए। भारतेन्दु ने विद्यासुन्दर आदि नाटकों के भी अनुवाद प्रस्तुत किये थे। इनके फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्ण दास ने 'स्वर्णलता', 'मरता क्या न करता' के अनुवाद सामने रखे। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने राजसिंह, इदिरा तथा राधारानी के अनुवाद बगला से किये।

हिन्दी-प्रचार के लिये उद्योग

इस प्रकार साहित्य-रचना का काम तो प्रारभ हो गया। पर हिन्दी के मार्ग में बहुत कठिनाइयाँ थीं। वह राजाश्रयहीन थी। कचहरी में उर्दू का बोलबाला था। स्कूलों मे नौकरी की कामना से उर्दू पढ़ी जाती थी। हिन्दी को अनेक हिन्दू भी नीची दृष्टि से देखते थे। अब भी ऐसे हिन्दू मिल जाते हैं जो हिन्दी का नाम आते ही मुँह बनाने लगते हैं। इन सब कठिनाइयों को दूर कर हिन्दी का मार्ग साफ करने के लिये हिन्दी-प्रेमियों को अनेक उद्योग करने पडे। कलकत्ते के बाबू कार्तिकप्रसाद स्वय

घूम घूमकर अपने पत्र के समाचार लोगो को सुनाया करते थे। कानपुर के प्रतापनारायण मिश्र अपने नगर मे हिन्दी-प्रचार के लिये व्याख्यान देते फिरते थे। भारतेन्दु जी अपने नाटकों के अभिनय में स्वय भाग लिया करते थे। मेरठ के पं० गौरीदत्त जी ने हिन्दी-प्रचार को अपना धर्म वना लिया। जहाँ देखिये वहाँ मेलो में ये अपना नागरी का झडा लिये उपस्थित रहते थे। इन्होंने मेरठ के आसपास अनेक हिन्दी-पाठशालाएँ स्थापित करवाईं। लोग इनका अभिवादन 'जै नागरी की' कह कर किया करते थे। सवत् १६५१ मे इन्होंने नागरी के प्रवेश के लिये एक मेमोरियल भी भेजा था।

कुछ अँगरेज विद्वान भी इस समय हिन्दी की ओर झुक रहे थे। फेडरिक पिन काट ने हिन्दी का अध्ययन कर अनेक पुस्तकों का संपादन किया तथा हिन्दी-प्रेम से प्रेरित हो भारत-वर्प की यात्रा की। सर ग्रियर्सन साहव ने भी हिन्दी की वहुत सेवा की। इन्होने बिहारी-सतसई, भापाभूषण, तुलसीकृत रामायण आदि अनेक पुस्तकों का सपादन वड़े परिश्रम से किया। सवत १९४६ मे इन्होने 'मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ नर्दन हिन्दुस्तान' (Modern Vernacular Literature of Northern Hindustan) प्रकाशित किया।

सवत् १६५० में काशी नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। इसके सस्थापको मे वावू श्यामसुदरदास, प० रामनारायण मिश्र, ठाकुर शिवकुमार सिंह आदि प्रमुख हैं। वावू राधाकृष्ण दासजी इस सभा के प्रथम सभापति नियुक्त हुए। इस सभा ने

हिन्दी-प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया। हिन्दी की आजकल जो प्रतिष्ठा है उसका बहुत कुछ श्रेय इसी सभा को तथा इसके कार्यकर्ताओं को है।

कचहरियों मे हिन्दी का प्रवेश कराने के लिये बाबू हरिश्चन्द्र ने बहुत उद्योग किये थे, पर उस समय वे उद्योग सफल नहीं हो सके। सवत १९५२ में काशी नागरीप्रचारिणी ने लार्ड मैकडानल के पास एक आवेदन-पत्र भेजा। इसके लिये प्रान्त मे आन्दोलन उठाया गया, स्थान स्थान पर सभाएँ की गईं, व्याख्यान दिये गये, अनेक लोगों के हस्ताक्षर करवाये गये। इस आन्दोलन के प्रधान नेता प० मदनमोहन मालवीय हुए। मालवीय जी ने हिन्दी के समर्थन में एक खोजपूर्ण पुस्तक 'अदालती लिपि और प्राइमरी शिक्षा' नामक लिखी। सवत् १९५५ मे एक डेपुटेशन नागरी का मेमोरियल लेकर लाट साहब से मिला। इसमें अयोध्यानरेश महाराज प्रतापनारायण सिंह, माडानरेश श्रीराम-प्रसाद सिंह, राजा बलवंतसिंह, डाक्टर सुन्दरलाल, मालवीय जी ऐसे प्रतिष्ठित सज्जन थे। यह उद्योग सफल हुआ। सवत् १९५७ में कचहरियो में नागरी के प्रवेश की घोषणा हुई।

खड़ी बोली — प्रारंभिक काल – २

(संवत् १९२४ से १९६०)

पद्य

भारतेन्दु का पीछा होते ही एक प्रश्न उग्र रूप में लोगों के सामने उपस्थित हुआ। गद्यक्षेत्र में खड़ी बोली चल निकली थी, पर पद्य में ब्रजभाषा ही का प्रयोग होता था। यह बात लोगों को कुछ खटकने लगी। कुछ लोगों ने आन्दोलन प्रारभ किया कि गद्य तथा पद्य दोनों एक ही बोली मे होने चाहिए। इस प्रश्न को लेकर साहित्यिकों में दो दल हो गये। इस विवाद के साथ मुजफ्फरपुर के बा० अयोध्याप्रसाद खत्री का नाम सदा स्मरण रहेगा जिन्होंने स० १९४५ में 'खड़ी बोली आन्दोलन' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की। उनका तो यहाँ तक कहना था कि तुलसी, सूर आदि हिन्दी के कवि ही नहीं थे। वे तो ब्रजभाषा और अवधी के कवि थे। नवीन लोग इन बाबू साहब के पक्ष-समर्थक हुए। पुराने साहित्यिक जैसे प० प्रतापनारायण मिश्र, राय देवीप्रसाद पूर्ण आदि इस आन्दोलन के विरोधी हुए। प्रतापनारायण जी ने अपने 'ब्राह्मण' में बहुत दिनो तक खड़ी बोली का विरोध किया। एक बार उन्होंने लिखा था " जो लालित्य, जो माधुर्य्य, जो लावण्य कवियों की उस स्वतन्त्र भाषा में है जो ब्रजभाषा, बुदेलखण्डी, बैसवारी और अपने ढंग पर लाई गई सस्कृत व फारसी से बन गई है, जिसे चन्द्र

से लेकर हरिश्चन्द्र तक प्राय: सब कवियों ने आदर दिया है, उसका सा अमृतमय चित्तचालक इस खड़ी और बैठी बोलियों में ला सके, यह किसी के बाप की मजाल नहीं।" पर समय की गति का प्रभाव आप पर भी पडा। आगे चलकर आपने अपनी सम्मति बहुत कुछ बदल दी और खड़ी बोली के आन्दोलन की ओर झुकने लगे। राय देवीप्रसाद पूर्ण ने भी एक बार लिखा था "जब तक हिन्दी में श्री तुलसी, सूर, केशव आदि कवियों की कविता का आदर है तब तक और जब तक खड़ी बोली मे, उनकी कविता के समान सरस सुदर और सर्वमान्य बृहत्काव्य-कलाप प्रस्तुत होकर जगत्-प्रचलित नहीं होता, तब तक पद्य-भाषा का न मान घटेगा न खड़ी बोली पद्य में बैठने पावेगी।" समय का प्रभाव इन पर भी पड़ा। आगे चलकर अपने नाटक की भूमिका में इन्होंने लिखा है—" मेरा अभिप्राय कदापि नहीं है कि खड़ी बोली में उत्तम कविता हो ही नहीं सकती।" यह विरोध धीरे धीरे घटने लगा। पुराने लोग भी इस ओर आने लगे। प० अंबिकादत्त व्यास ने अपना 'कसवध' काव्य बरवा छन्द और खड़ी बोली ही में लिखा। इस काव्य में एक विशेषता यह भी है कि इसमें अन्त में तुक नहीं मिलाई गई है। इस समय के प्रारंभिक कवियों में प० श्रीधर पाठक, प० नाथूराम शर्मा, तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण के नाम लिये जा सकते हैं।

इस समय छन्दों के चुनाव का भी प्रश्न था। गजलों और लावनियों की शैली से तथा फारसी छन्दों का सहारा लेकर

उर्दू कवि पहले से रचना करते आते हैं। हमारे कवियों को इस शैली को अपनाने मे कुछ सकोच का बोध हो रहा था। संस्कृत-छन्दों की ओर कुछ लोग जाना चाहते थे। कवित्तो, सवैयों के ढाँचे मे खड़ी बोली ठीक बैठती नहीं प्रतीत होती थी। खड़ी बोली अपनी अकड़ नहीं छोड़ सकती थी और सवैया आदि छन्दों को इतनी अकड़ पसन्द न थी। इस विषय में कोई मार्ग निश्चित न हो सका। प्रत्येक कवि अपने ढंग से इस प्रश्न को हल करने लगा। खड़ी बोली के क्रियापदों से भी एक कठिनाई होती थी। दो दो और तीन तीन शब्दों के योग से बननेवाली क्रियाएँ पद्यों में ठीक जमती न थीं। कुछ लोग 'दर्शाते' ऐसे प्रयोग भी करने लगे। प० नाथूरामशंकर शर्मा ने अलीगढ़ की बोली के अनुकरण पर 'खाते हैं' के स्थान पर 'खाते' मात्र ही का प्रयोग चलाना चाहा। अनेक रचनाओं मे उन्होंने ऐसा किया भी है। सब मिला कर यह अवश्य कहना चाहिए कि इस बोली में रचना प्रारभ तो अवश्य हो गई, पर इसमे रसात्मकता न आ सकी। इस समय की रचनाएँ बहुत ही नीरस सी प्रतीत होती हैं। उस समय के लोगों ने मातृभाषा प्रेम के आन्दोलन से प्रेरित होकर उन नीरस रचनाओं को भी बड़े आदर और प्रेम से अपनाया।

इस समय से काव्य के विषयो में भी कुछ नवीनता दिखाई पड़ने लगी। नवीन विषयों में सबसे ऊँचा स्वर देश-भक्ति के राग का था। अँगरेजी साहित्य के सपर्क से लोगो की आँखें खुलने लगी थीं। अँगरेजों में देशभक्ति की भावना बहुत

प्रबल है। हमारे यहाँ यह भावना वास्तविक रूप में नहीं रही है। इस समय से देशभक्ति पर भी रचनाएँ होने लगीं। पर इस समय की देशभक्ति में वह उग्रता नहीं थी जो आगे चलकर दिखाई पडी। अँगरेजी शासन को स्थापित हुए अभी थोडे ही दिन हुए थे। उसकी सुव्यवस्था पर लोग मुग्ध थे। लोगों के मुँह से निकले हुए ऐसे उद्गारो से 'अब नवाबी नहीं है, सरकारी राज्य है' इस समय की भावनाओ का आभास मिल सकता है। भारतेन्दु जी ने स्वय अँगरेजी राज्य की प्रशसा मुक्तकण्ठ से की है। देखिए:—

अँगरेज-राज सुख-साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी॥

इस प्रकार एक ओर तो लोग नवीन शासन पर मुग्ध थे, दूसरी ओर नवीन शिक्षा से लोगों की आखें खुल रही थीं। आर्यसमाज के प्रचार से तथा कांग्रेस की स्थापना से भी नवीन भावनाएँ धीरे धीरे उठने लगी थीं। समाजसुधार के भी कुछ नवीन विषय रचनाओं में आने लगे थे। विधवाओं की दशा, बालविवाह आदि के प्रश्न भी सामने आ जाते थे। हास्य रस के लिए नवीन शैली के बाबुओं, घूसखोर सरकारी नौकरो आदि का उपयोग किया जाता था।

श्रीधर पाठक:—सरकारी नौकरी पर होते हुए भी इन्होंने हिन्दी की बहुत सेवा की। इनकी रचनाएँ ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में हैं। ब्रजभाषा की रचनाएँ अधिक

सरस बन पड़ी हैं। व्रजभाषा में आपने गोल्डस्मिथ के 'डेजर्टेड विलेज' का अनुवाद बड़ी सफलता से किया। इसके पश्चात इसी कवि के ट्रैवलर का अनुवाद श्रान्त-पथिक नाम से खड़ी बोली में प्रस्तुत किया। 'एकान्त-वासी योगी' नामक रचना अनुवादरूप में सं० १९४३ में सामने आई। इनकी खड़ी बोली व्रजभाषा से कुछ प्रभावित रहती है। क्रियापदों का प्रयोग तो प्रायः व्रजभाषा के अनुकरण पर हो गया है। ये एक प्रकृतिप्रेमी कवि थे। प्रकृतिवर्णन की रचनाएँ खड़ी बोली तथा व्रजभाषा दोनों में की हैं। इसके अतिरिक्त समाज-सुधार, मातृभाषा-प्रेम, देशभक्ति आदि विषय भी इनकी रचनाओ में आये हैं।

पंडित नाथूराम शंकर शर्मा (सवत् १९१६–१९८८):— ये भी व्रजभाषा मे कविता करते थे। नवीन आन्दोलन उठते ही व्रजभाषा का मोह छोड़ खड़ी बोली मे लिखने लगे। इनमें शक्ति तथा प्रतिभा दोनो थी। पर आर्यसमाज के प्रचार की धुन ने इन्हे कुछ अक्खड़ बना दिया था। इनकी अधिकांश रचनाएँ उपदेशात्मक हुई हैं। इनके स्वभाव का अक्खड़पन इनकी भाषा में भी लक्षित होता है। अनेक स्थानों पर मनमाने प्रयोग किये हैं। कुछ प्रान्तीय शब्दों का भी प्रयाग कर दिया है जिससे भाषा में जटिलता आ गई है। कुछ शृंगारी कविताएँ भी की हैं। अपनी अतिशयोक्तियों में ये दूर की कौड़ी लाने के फेर मे बहुत पड़ जाते थे।

राय देवीप्रसाद पूर्ण— इनकी व्रजभाषा की रचनाएँ अधिक मधुर हुई हैं। खड़ी बोली में भी रचनाओं के विषय वे ही रहते थे जो व्रजभाषा में। भक्ति, वेदान्त, देशभक्ति, स्वदेश-प्रेम, प्रकृतिवर्णन आदि इनकी रचनाओं के मुख्य विषय हैं। स्वदेशी वस्त्र-व्यवहार का भी आपने उपदेश दिया है।

खड़ी बोली—मध्य काल—१

(संवत् १९६०-१९७५)

गद्य

भारतेन्दु काल उत्साह और प्रचार का काल था। उस समय भाषा मे एकरूपता लाने का प्रयत्न नहीं किया जा सका। इस समय का जो लेखक जिस भाषा का ज्ञाता होता था उसी भाषा से प्रभावित उसकी हिन्दी हो जाती थी। पं० अंबिकादत्त व्यास ऐसे सस्कृत के पण्डितों की भाषा संस्कृत के अधिक शब्दों को लेकर चलती थी, प० बदरीनारायण चौधरी ऐसे लेखक फारसी के अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग कर दिया करते थे। प्रान्तीय पदावली तथा प्रयोगों की भी बहुलता रहती थी। समाचार-पत्रो के अधिक प्रचार से भाषा अपना स्वरूप कुछ कुछ स्थिर करने लगी थी। पर इस स्थिरता पर आघात पहुँचाने वाले कई कारण भी उत्पन्न होने लगे थे जिनके फलस्वरूप अनेक वर्षों तक अनियन्त्रित उथल-पुथल मची रही। इन उथल-पुथल मचानवालों की नीयत अच्छी थी, समझ नही। लगे हाथों कुछ मातृभाषा की सेवा कर लेनी चाहिए, यह सोचकर अनेक अँगरेजी के ज्ञाता हिन्दी लिखने लगे। हिन्दी की अभिव्यंजन-शक्ति अभी सीमित थी अत: नवीन लेखकों को अपनी कहने में असुविधा होने लगीं। हिन्दी की स्वतन्त्र शक्ति को जगाने के लिये शक्ति तथा अध्यवसाय आवश्यक थे। उधर अँगरेजी के

प्रयोग मस्तिष्क में नाच रहे थे। नवीन लोगों ने इन्हीं अँगरेजी शब्दों तथा मुहावरों का अनुवाद करना प्रारम्भ किया। दृष्टिकोण, स्वर्ण-सुयोग ऐसे प्रयोग इसी समय से भाषा में आने लगे। वाक्य-विन्यास पर भी अँगरेजी का प्रभाव पड़ने लगा। हिन्दी की अपनी शिष्ट शैली की उपेक्षा भी प्रारम्भ हुई। उधर बँगला की ओर से भी अनेक प्रयोग आने लगे थे। बँगला के नाटकों और उपन्यासों का अनुवाद प्रारम्भ हो ही चुका था। इन अनुवादों के द्वारा बँगला भाषा की कुछ विशेषताएँ भी इधर आने लगी थीं। उर्दू से हिन्दी पहले ही से प्रभावित होती चली आ रही थी। इस प्रकार हिन्दी के स्वतन्त्र-स्वरूप विकास के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित हो रही थीं। इस समय भाषा के नियन्त्रण की आवश्यकता थी। यह कार्य प० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के द्वारा सम्पन्न हुआ, जिसके लिये साहित्य सदा उनका ऋणी रहेगा तथा द्विवेदी जी का नाम साहित्य के इतिहास में गौरव के साथ अंकित होगा। द्विवेदी जी संवत् १९६० में सरस्वती पत्रिका के संपादक रूप में सामने आये। इस पत्रिका के द्वारा इन्होंने भाषा की शुद्धता का आन्दोलन प्रारम्भ किया। आपने निस्संकोच लोगों के भ्रमपूर्ण प्रयोग सामने रखे। अनेक लोगों को द्विवेदी जी की दवा कड़वी जँची। पर ये अपनी शैली से चिकित्सा में डटे रहे। फल यह हुआ कि कच्चे लोगों को अपने को सँभालना पड़ा। धीरे-धीरे भाषा परिमार्जित होने लगी तथा उसमें स्थिरता आने लगी। इस समय व्याकरण के प्रश्नों को लेकर अनेक विवाद उठ खड़े हुए तथा साहित्यिकों में

दलबन्दी भी दिखाई पड़ी। इस दलबन्दी के फलस्वरूप पत्र-पत्रिकाओं में कुछ कटुता के भी दर्शन हुए। द्विवेदी जी के ऊपर बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने गुप्त रूप ('आत्माराम' नाम) से अनेक आक्षेप किये। पं० गोविन्दनारायणजी मिश्र को इस प्रकार आक्षेप करना उचित नहीं प्रतीत हुआ। इन्होंने 'आत्माराम की टें टें' शीर्षक देकर द्विवेदी जी का पक्ष-समर्थन किया तथा गुप्त जी को आड़े हाथों लिया। विभक्तियों के प्रयोग के विषय में प० गोविन्दनारायण मिश्र का द्विवेदी जी से स्वय मत-विरोध था। मिश्रजी की सम्मति थी कि हिन्दी में सस्कृत के ढँग से विभक्तियाँ शब्दो के साथ लिखी जायँ। द्विवेदी जी विभक्तियों को शब्दों से पृथक् लिखने के पक्ष में थे। इस प्रश्न को लेकर साहित्यिकों में दो दल हो गये। काशी तथा प्रयाग के विद्वान् द्विवेदी जी की ओर हुए तथा कलकत्ता के पत्र सपादकों ने मिश्र जी की शैली को अपनाया। अब तो विभक्तियाँ पृथक् ही लिखी जाती हैं। कलकत्ते के कुछ पुराने सपादको में अभी पुराना आग्रह अवश्य बना है। इन साहित्यिक विवादों का फल यह हुआ कि नवीन लेखकों को अधिक सतर्क तथा सयत होना पड़ा।

इस काल में कुछ पुष्ट लेखक सामने आये जिनकी रचनाओं का स्थायी साहित्यिक महत्त्व है तथा जिनमें से अनेक अभी तक साहित्य-सेवा में योग दे रहे हैं। इनमें पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं० माधवप्रसाद मिश्र, प० गोविन्दनारायण मिश्र, प० रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदरदास, पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गोपालराम गहमरी, बाबू

ब्रजनदन सहाय, पं० पद्मसिंह शर्मा, अध्यापक पूर्ण सिंह, बाबू गुलाबराय एम ए आदि मुख्य हैं। इनकी भाषाशैली का परिचय क्रम से इस प्रकार है।

पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—इनका अनेक भाषा-शैलियो पर अधिकार था। इनकी भापा की सतह विषय के अनुकूल रहती थी। यह विशेषता कम लेखको में प्राप्त होती है। कठिन विपयों का प्रतिपादन करते समय भापा सस्कृत की तत्समता की ओर उठने लगती है। साधारण विषय चलती भाषा मे लिखे जाते हैं। लेखक जटिल विपयो को सरल भापा में समझाने की शक्ति रखता है। लेखक में व्यग्य करने की अच्छी क्षमता है। चलते हुए विदेशी शब्दों का प्रयोग बराबर हुआ है। लेखक की भाषा बहुत ही सशक्त है।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त—ये पहले उर्दू मे लिखा करते थे। उर्दू की ओर से इधर आने वाले लेखकों की भाषा बहुत मँजी होती है। उर्दू भापा में एक चमत्कार तथा स्फूर्ति है जो हिन्दी में बहुत कम दिखाई पड़ती है। गुप्तजी की भाषा इशा की भापा से कुछ मिलती है। हास-परिहास तथा व्यग्य आदि के लिये इनकी भाषा बहुत अनुकूल पड़ती है। गुप्तजी प्रायः कलकत्ते के भारतमित्र में लिखा करते थे। अनेक लेख 'शिवशभु' के नाम से लिखे गये हैं। इन लेखों में प्राय. उस समय के राजनीतिक तथा सामाजिक विषयों की आलोचना है। आपने कुछ कविताएँ भी की हैं। एक कवित्ता में 'उर्दू बीबी' को कुछ सीखें दी हैं। यह बहुत सुन्दर बन पड़ी है।

करना आप अच्छी तरह जानते हैं। आपकी भाषा में कभी कभी चमत्कार तथा प्रदर्शन भी लक्षित होते हैं।

पंडित पद्मसिंह शर्मा—आप उर्दू-साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। इस उर्दू-परिज्ञान का प्रभाव आपकी भाषा में सर्वत्र लक्षित होता है। आपकी भाषा सौम्य और गम्भीर न होकर कुछ चटक-मटक लिए हुए रहती है। शर्मा जी तीखे और सच्चे व्यग्य करने वालों में थे। मूर्खों का दम्भ आपको कभी नहीं रुचा। ऐसों पर आप सदा कठोर और निर्दय प्रहार करते थे। यों आपके हृदय की सहृदयता तथा सज्जनता आपकी शैली मे सदा लक्षित होती है। भाषा में किशोरावस्था की सी मुसकान और यौवनावस्था की सी आशावादिता सर्वत्र मिलती हैं।

अध्यापक पूर्ण सिंह—सरस्वती में आपके कुछ निबन्ध ही निकले थे। पर इतना ही साहित्यिकों को सदा आपकी याद दिलाता रहेगा। आपके लेखों की सी मूर्तिमत्ता इधर तो देखने में नहीं आई। आपकी शैली से करुणा तथा सहानुभूति बराबर फूटी पड़ती हैं। एक नए ही जगत का आप सकेत कर रहे थे। पर हमारे दुर्भाग्य से बहुत दिन तक आप हमारे बीच नहीं रह सके।

बाबू गुलाबराय—आप बहुत दिनों से लिखते आते हैं। तर्कशास्त्र इत्यादि पर शास्त्रिय ढंग की प्रस्तुकें प्रस्तुत कर आपने हिन्दी की अच्छी सेवा की है।

उपन्यास

हरिश्चन्द्र काल में इस क्षेत्र में बहुत काम नहीं किया जा सका था। नाम गिनाने को परीक्षागुरु ऐसे एक-आध उपन्यास का नाम लिया जा सकता है। द्विवेदी काल में उपन्यासों की धूम रही। पर उच्च कोटि के वास्तविक उपन्यास इस काल में भी नहीं लिखे जा सके। इस समय के उपन्यासों के हम दो विभाग कर सकते हैं। एक मौलिक, दूसरे अनूदित। अनुवाद प्राय. बँगला भाषा से किये गये। अनुवाद करनेवालों में बाबू गदाधर सिंह, बाबू रामकृष्ण वर्मा, बाबू कार्तिकप्रसाद, बाबू गोपालराम गहमरी मुख्य हैं। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने "वेनिस का बाँका" नामक उपन्यास उर्दू से अनूदित किया। इस काल के पिछले दिनों मे पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा, बाबू रामचन्द्र वर्मा और पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ने अनुवाद-क्षेत्र में बहुत काम किया। वर्माजी ने मराठी से छत्रशाल का भीं अनुवाद प्रस्तुत किया। वर्मा जी तथा पाण्डेय जी अब तक इस क्षेत्र में डटे हुए हैं। मौलिक उपन्यास-लेखकों मे बाबू देवकीनन्दन खत्री तथा पण्डित किशोरीलालजी गोस्वामी के नाम सामने आते हैं। खत्रीजी को "चन्द्रकान्ता" हिन्दी की सर्वप्रिय पुस्तकों में से एक है। इसके अतिरिक्त "काजर की कोठरी कुसुम कुमारी, गुप्त गोदना, नरेन्द्र-मोहिनी" आदि अनेक अन्य उपन्यास हैं। आपके उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रयास नहीं किया गया है। आप कोरे कहानी कहने वाले थे और पाठक के हृदय में "फिर क्या हुआ"

की जिज्ञासा को सदा बनाए रखते थे। आपकी पुस्तक ने हिन्दी-प्रचार में बहुत सहायता दी है। पण्डित किशोरीलालजी गोस्वामी के उपन्यासों की संख्या साठ से भी ऊपर तक पहुँचती है। आपने अपने उपन्यासों में भाषा की अनेक शैलियों का प्रदर्शन किया है।

इसी काल में बाबू गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास भी सामने आने लगे थे। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने "ठेठ हिन्दी का ठाट" और "अधखिला फूल" लिखे। पण्डित लज्जाराम मेहता ने "धूर्त रसिकलाल, आदर्श हिन्दू, बिगड़े का सुधार" आदि उपन्यास प्रस्तुत किए। बाबू व्रजनन्दनसहाय ने भी अनेक उपन्यास लिखे।

नाटक

नाटक-क्षेत्र में भी यह काल अनुवादों का ही रहा। अँगरेजी, बँगला तथा संस्कृत से अनेक नाटक अनुवाद रूप में प्रस्तुत किये गये। लाला सीताराम जी बी० ए० ने संस्कृत से "नागानन्द, मृच्छकटिक, उत्तररामचरित, मालविकाग्निमित्र, मालती-माधव" आदि नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किए। लालाजी ने अँगरेजी से शेक्सपियर के भी कई नाटकों के अनुवाद किए। पुरोहित गोपीनाथ जी ने 'रोमियो जूलियट' तथा 'ऐज यू लाइक इट' उपन्यास अनुवादित किए। पण्डित सत्यनारायण कविरत्न ने भी भवभूति के उत्तररामचरित तथा

मालती-माधव नाटकों के अनुवाद किए । स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय तथा गिरीशचन्द्र घोष के नाटकों के अनुवाद बाबू रामचन्द्र वर्मा तथा पण्डित रूपनारायण पाण्डेय के द्वारा प्रस्तुत किये गये । राय देवीप्रसाद पूर्ण जी ने चन्द्रकला भानु-कुमार नामक एक बड़ा सा नाटक लिखा। यह अभिनय के योग्य नहीं हुआ । इस काल के अन्तिम दिनों में पंडित नारायणप्रसाद बेताब ने महाभारत नाटक लिख कर जनता की रुचि को उर्दू प्रधान पारसी नाटको की ओर से हिन्दी की ओर मोड़ा ।

समालोचना

हमारे यहाँ रसो और अलकारो की परिपाटी को प्रतिष्ठा बहुत प्राचीन काल में हो चुकी थी । अग्निपुराण ही में इन विषयों के बीज निहित हैं। भरत मुनि ने भी अपने नाट्यशास्त्र में रसों पर पर्याप्त विचार किया है। आगे चलकर इन विषयों का खूब विकास हुआ। संस्कृत-साहित्य के आचार्यों ने अलकारों इत्यादि के उदाहरणों के रूप मे अनेक सुकवियों की रचनाओं को उद्धृत किया है। दोषों के उदाहरणो के रूप में भी अनेक रचनाएँ उद्धृत की गई हैं। इस प्रकार बँधे शब्दों में गुण-दोष विवेचन में तत्पर आलोचना का प्रारंभ हो गया। पर इस आलोचना में अधिक विस्तार न रहता था। आचार्यों ने कुछ कसौटियाँ प्रस्तुत कर दी थीं जिनका उपयोग कर कवियों की रचनाओं को परख लिया जाता था और कुछ थोड़े से बँधे हुए

शब्दो मे सपूर्ण रचनाओं का एक प्रमाणपत्र दे दिया जाता था। किसी कवि के विषय में कह दिया जाता था कि उसकी उपमाएँ अच्छी हैं तथा किसी अन्य के विषय मे यह कि उसकी उत्प्रेक्षणाएँ सफल है। बस इससे आगे आलोचना नहीं बढ़ी।

योरप की दशा भिन्न रही। आलोचना का प्रारंभ यूनान देश में हुआ। यवनाचार्य अरस्तू ने काव्यों और नाटकों के विपय में कुछ सिद्धान्त निश्चित किये। इन सिद्धान्तो का प्रचार योरप में अब तक है। फ्रांस देश में नवजागर्ति के पश्चात् आलोचनाशास्त्र का साहित्य के एक विशेप अंग के रूप में विकास हुआ। इटली ने भी समय समय पर इसमें योग दिया। इंगलैण्ड में इस शास्त्र का विकास बहुत पीछे से हुआ। हमारे देश में जब ॲगरेजी का विशेप प्रचार हुआ तो उसका प्रभाव हमारे साहित्य की प्रगति पर भी पड़ा। बगालवालों ने ॲगरेजी ढग की समालोचना शैली का सुन्दर सूत्रपात किया। हमारे यहॉ इस शैली को अपनाने मे बहुत आगा-पीछा किया गया। इसका मुख्य कारण यह था कि हमारे रीतिकाल के कवियों ने इस क्षेत्र में अपने ढग से बहुत कुछ काम किया था। पर धीरे धीरे प्राचीनता का मोह दूर हुआ और नवीन ढग के आलोचनात्मक लेख पत्र-पात्रकाओं में दिखाई पड़ने लगे। पण्डित बदरीनारायण चौधरी ने लाला श्री निवासदास की पुस्तक सयोगिता-स्वयंवर की आलोचना की। इसमें चौधरी साहब ने दोप दिखाने की ओर कुछ अधिक

ध्यान रक्खा। इसके पश्चात् पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी एक सिद्ध तथा सफल आलोचक के रूप में सामने आए। ये सामयिक पुस्तकों पर अच्छी सम्मति दिया करते थे। इन्होंने उसी समय में प्रकाशित 'हिन्दी-नवरत्न' की बहुत ही विस्तृत तथा सारगर्भित आलोचना की।

पाठकों को सरस्वती की पुरानी फाइलों में से इसे पढ़ कर अब भी आनन्द आ सकता है। द्विवेदीजी ने हिन्दी में 'कालीदास की आलोचना' नामक पुस्तक में लाला सीताराम जी के कालीदास के अनुवाद-ग्रन्थों की आलोचना की। आपने और भी अनेक ग्रन्थो में आलोचनात्मक निबन्ध लिखे। मिश्रबन्धुओं ने 'हिन्दी-नवरत्न' नामक पुस्तक में चन्द्र से लेकर हरिश्चन्द्र तक नौ कवियो की रचनाओं का विवेचनात्मक वर्णन उपस्थित किया। कुछ लोगो की सम्मति है कि आपका देव के प्रति कुछ अधिक अनुराग है। देव के प्रश्न को लेकर कुछ दिनों तक अच्छी चहल-पहल रही। पडित कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' नामक पुस्तक में बड़े सौम्य तथा शान्त ढग से अपने पक्ष को उपस्थित किया। इसके उत्तर में लाला भगवानदीन जी ने 'बिहारी और देव' नाम की पुस्तक प्रकाशित की। मिश्र-बन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु-विनोद' में हिन्दी के उस समय तक प्राप्त कवियों का इतिवृत्त तथा उनकी रचनाओं का आलोचनात्मक परिचय दिया। हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने वालों को इस पुस्तक से सदा सहायता मिली और मिलेगी। पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने अपनी पुस्तक में बिहारी की रचनाओं

पर अच्छा प्रकाश डाला। आपने एक प्रौढ़ वकील की सी योग्यता से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि यद्यपि बिहारी की सारी सामग्री 'आर्यासप्तशती तथा गाथासप्तशती' से ली गई है, फिर भी बिहारी अनेक गुणों के कारण इन मूल-लेखकों से भी आगे बढ़ गये हैं। शर्माजी ने जिस तुलनात्मक शैली की प्रतिष्ठा की उसका प्रचार बहुत दिनों तक रहा। वास्तविक समालोचना का प्रारम्भ अभी होने को था।

खड़ी बोली—मध्य काल-२

(संवत् १९६०-१९७५)

पद्य

जैसा कि कहा जा चुका है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् खड़ी बोली का आन्दोलन क्रमशः बल ग्रहण करता गया। पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी के सरस्वती के सम्पादक रूप मे आने से इस आन्दोलन को एक महावीर सहायक मिला। इन्होंने खड़ी बोली में लिखने का प्रयत्न करने वाले लोगों का उत्साह बढ़ाया। बाबू मैथलीशरण गुप्त ऐसे कवि उसी उत्साह का फल हैं। कुछ लोगों को—जैसे पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय को—इसकी आवश्यकता न पड़ी। ये स्वयं अपनी प्रतिभा से पूर्ण थे।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय:— ये 'हरिऔध' उपनाम से बहुत पहले से रचनाएँ करते आते हैं। इनकी उस काल की ब्रजभाषा की रचनाएँ बहुत सम्मानित हुईं। ब्रजभाषा में भी आपकी शक्ति का अच्छा प्रदर्शन है।

आपकी उस काल की रचनाएँ 'रसकलस' नामक पुस्तक में सगृहीत हैं। आपकी ख्याति का मुख्य श्रेय प्रियप्रवास नामक प्रबन्ध-काव्य को है। यह ग्रन्थ आपने सस्कृत वर्णवृत्तों में महाकाव्य की शैली पर लिखा है। इसमें सस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। कुछ स्थानों पर ब्रजभाषा

की भी छाप पड़ी है, जो कभी कभी क्रियापदों तक में लक्षित हो जाती है। इसमें वर्णवृत्तों की शैली पर अन्त में तुक मिलाने की आवश्यकता नहीं पडी है। ग्रन्थ मे व्रजमण्डल के परम प्रिय गोपाल कृष्ण के मथुरा-प्रवास का वर्णन है। कवि ने कृष्ण को व्रज के संरक्षक रूप में उपस्थित किया है। वे गोपिका-नदन के स्थान में सच्चे व्रजनदन के रूप में सामने आते हैं। व्रज-वासियों पर पड़ने वाली विपत्तियो को दूर करने में, अपने ऊपर झेलने में, वे सदा सामने आते हैं। ऐसे के वियोग में व्रज-वासियों का दुखित होना स्वाभाविक ही है। कवि ने इस वियोग-व्यथा को बड़ी तल्लीनता तथा सहानुभूति से गाया है। एक सर्ग के पश्चात् दूसरे सर्ग में यह वियोग-व्यथा चलती रहती है और पाठक ऊबते नहीं। बाह्य दृष्टि से असम्भव सी प्रतित होती हुई पौराणिक गाथाओ का लौकिक दृष्टि से सामंजस्य भी किया गया है। यह आधुनिक युग के तर्कवाद की प्रेरणा का फल है। तृणावर्त, वकासुर आदि को मारने तथा उँगली पर गोवर्धन पर्वत को उठा लेने की कथाओ को ऐसे रूप में उपस्थित किया गया है कि वे आधुनिक युग के अनुकूल हो गई हैं। ग्रन्थ में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन भी सफलता से किया है। कुछ स्थलों पर केशवदास जी का भी प्रभाव पड़ गया है वर्षा आदि ऋतुओ के वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। अलकार-विधान में कवि की कला सदा संयत रही। चमत्कार के लिये इन्होंने अलंकारों का प्रयोग कभी नही किया। 'प्रिय-प्रवास' में कवि ने मुहावरों का प्रयोग बहुत कम किया है। इस कमी की पूर्ति आपकी

आजकल की रचनाएँ कर रही हैं। अपने 'हरिऔध हजारा' में मुहावरों की करामात अच्छी तरह दिखलाई है। पर यदि किसी को बुरा न लगे तो यह कह देना ही पड़ेगा कि अपनी ऐसी पुस्तकों में उपाध्याय जी वास्तविक कवि के आसन से बहुत नीचे उतर आये हैं।

आपने गद्य क्षेत्र में भी बहुत सेवाएँ की हैं। प्रायः सात सौ पृष्ठों में हिन्दी-साहित्य का इतिहास ही लिख डाला है। समय समय पर और भी अनेक लेख आपने लिखे हैं। प्राय. कवि-सम्मेलनों के सभापति आप होते रहते हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी आप हो चुके हैं। आपकी प्रियप्रवास नामक पुस्तक सम्मेलन द्वारा पुरस्कृत भी हो चुकी है।

पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल:— आपकी व्रजभाषा की रचनाएँ सख्या में थोड़ी होने पर भी काव्यप्रेमियों को बहुत प्रिय लगती हैं। बुद्धचरित भी व्रजभाषा ही में लिखा गया। इधर कुछ दिनो से आप खड़ी बोली में भी लिखने लग गये हैं। इनमें से कुछ रचनाएँ माधुरी में प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रकृति-वर्णन की ओर आपकी विशेष प्रवृत्ति रही है। आपकी रचनाओ में सर्वत्र वह ममता सयत रूप में निहित मिलती है जो चराचर को अपने भीतर ले लेने के लिए उत्सुक है।

पण्डित रामचरित उपाध्याय:—आपने बहुत सो फुटकर रचनाएँ की हैं जिनका क्रम अब तक चल रहा है। 'रामचरित-चिन्तामणि' नामक एक प्रबन्ध-काव्य वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा है। इस ग्रन्थ पर मानस की भी छाप पड़ी

है। कवि ने मार्मिक स्थलों पर उतना ध्यान नहीं दिया है। फिर भी कथा संयत प्रवाह से अग्रसर होती है।

लाला भगवानदीन:—आप उर्दू तथा फारसी साहित्य के अच्छे पंडित थे। इसका प्रभाव आपकी हिन्दी-रचनाओं में भी कभी कभी लक्षित होता है। शरीर से नाजुक होते हुए भी आप वीरों के गुण गाने में तल्लीन रहते थे। कलम-सूर लाला जी 'असि-सूरों' के गुण गाते रहे। 'वीर क्षत्राणी, वीर बालक, वीर माता, वीर पत्नी, वीर प्रताप' आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। ये सब वीर-पंचरत्न नाम से सगृहीत हैं। इस पुस्तक का जनता में अच्छा प्रचार है। आपकी फुट-कल रचनाएँ भी अच्छी हैं, जिनका संग्रह 'नवीन बीन' नाम से हुआ है। आप काव्य में चमत्कार को मानने वाले लोगों मे हैं। आँसू, ताजमहल, चाँदनी, मेंहदी, मसान आपकी सुन्दर रचनाएँ हैं। आपने अनेक प्राचीन ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी हैं, जिनसे हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं को बहुत सहायता मिलती है। आप हिन्दी-साहित्य के एक सफल अध्यापक थे।

पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही':—पहले आपकी रचनाएँ उर्दू मे 'त्रिशूल' नाम से निकला करती थीं। फिर आप इधर आये, और ठाट से आये। आपकी भाषा बहुत ही मँजी हुई है। शृंगार और देशभक्ति आपके प्रिय विषय हैं। असह-योग के दिनों में आपकी वीरोल्लासपूर्ण रचनाओं का बहुत प्रचार था। अब भी वे रचनाएँ पाठकों को बहुत प्रिय हैं। विरह के गीत गाने में भी आप दक्ष हैं। शृंगार की पिच्छल भूमि पर

आप उसी अदा से चलते हैं जिससे आपके लखनऊ के पड़ोसी। इधर आप कानपुर से कविता का एक पत्र "सुकवि" नाम से निकाल रहे हैं।

पंडित रामनरेश जी त्रिपाठी:— आपकी रचनाओं का मुख्य विषय देशभक्ति का राग है। पर सीधी शिक्षा न देकर आपने अपनी बात को कुछ कथाओं का आश्रय लेकर कहा है। आपकी तीन प्रसिद्ध पुस्तकें पथिक, मिलन तथा स्वप्न हैं। इन तीनों में देशभक्ति की शिक्षा दी गई है। इन काव्यों मे आये हुए पात्रों का चित्रण इस रूप में नहीं हुआ कि वे अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की छाप हमारे हृदय पर डाल सकें। वे आधुनिक प्रचलित भावनाओं के प्रतीक-स्वरूप ही आते हैं। पथिक में सुन्दर दृश्यों का चित्रण भी किया गया है। आपकी भाषा बहुत ही सरल तथा परिमार्जित है। बहुत सी फुटकल कविताएँ भी की हैं। कविता-कौमुदी नाम से दो भागों में हिन्दी के कवियों की रचनाओं का सग्रह किया गया है। बड़े परिश्रम से भिन्न भिन्न प्रान्तों के ग्रामगीतों का संग्रह भी आपने किया है। इधर रामायण का भी आपने सम्पादन किया है।

पंडित रूपनारायण पाण्डेय:— आपकी अनेक कविताओं के विषय प्रायः सामयिक हैं। भक्ति इत्यादि पर आपने कुछ रचनाएँ की हैं, पर आपको नारायण का स्वरूप नर ही में देखने में अधिक आनन्द आता है। आपकी सहानुभूति के भीतर पशु-पक्षी भी आ जाते हैं। आपने कुछ कहानियाँ भी पद्य में लिखी हैं। 'वन-विहंगम' नामक रचना लोगोंने बहुत पसन्द की।

पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय:— आप मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध साहित्यिक हैं। इतिहास आपका प्रिय विषय है। इस क्षेत्र में आपने बहुत काम किया है। आपकी रचनाएँ प्राय: सरस्वती में निकलती रहती हैं। आपकी भाषा बहुत ही सरल है। भावक्षेत्र में भी आप परिचित क्षेत्र से इधर उधर नहीं जाते। उड़िया भाषा में भी आपने सुन्दर रचनाएँ की हैं। व्रजभाषा में आपकी अनेक रचनाएँ हैं। आपके अनुज पं० मुकुटधर पाण्डेय भी सुन्दर रचनाएँ कर लेते हैं।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त:— आपकी प्रारंभिक रचनाएँ सरस्वती में निकला करती थीं। क्रमश: आप प्रसिद्धि प्राप्त करते गये और आपकी गणना हिन्दी के प्रमुख कवियों मे हुई। आपने हिन्दी-साहित्य का एक विस्तृत युग देखा है। इस बीच मे साहित्य में अनेक परिवर्तन हुए। लोगो की रुचियों में भी क्रान्तियाँ हुईं। मैथिलीशरणजी की एक यह बहुत बड़ी विशेषता है कि वे सदा युग के साथ रहे।

आज भी आपकी नवीन शैली की रचनाएँ उसी प्रेम से पढ़ी जाती हैं जिस प्रेम से आपकी प्रारम्भिक तुकबन्दियाँ पढ़ी गई थीं। कोई भी कवि इतना सर्वप्रिय नहीं हो सका है जितने कि आप हैं। आपकी प्रसिद्धि सबसे पहले 'भारत-भारती' के कारण हुई। इसके पश्चात् जयद्रथ-वध, पंचवटी, रंग मे भंग, साकेत, यशोधरा, द्वापर आदि अनेक काव्यों की रचना की। अनघ नामक ग्रन्थ में आपने बुद्ध भगवान् के एक अवतार की कथा लिखी है। गुरुकुल नामक ग्रन्थ में हिन्दुओं के रक्षक

सिख-गुरुओं के गुणगान किये गये हैं। हिन्दू नामक पुस्तक हिन्दू-सम्प्रदाय को दृष्टि में रखकर लिखी गई है। आपके मस्तिष्क की सबसे ऊँची उड़ान द्वापर में देखी जा सकती है। इस समय आपकी सबसे सम्मानित पुस्तक 'साकेत' मानी जाती है। इस पुस्तक की मुख्य पात्र उर्मिला है। कवि ने इस देवी का चरित्र बडी सहानुभूति से उपस्थित किया है। अब तक कवियों द्वारा इसकी उपेक्षा ही कर दी जाती थी। इसका मुख्य कारण यह था कि कवि-गण उर्मिला के चरित को प्रधान करके सीता को पीछे नहीं डालना चाहते। गुप्त जी ने ऐसी चतुराई से उर्मिला को उपस्थित किया है जिससे दोनों उद्देश्यों की रक्षा हो गई है।

कवि ने ग्रन्थ में बहुत से सुन्दर गीत लिखे हैं। उर्मिला के अतिरिक्त कैकेयी तथा भरत के चरित्र भी सुन्दर बन पड़े हैं। कवि ने कैकेयी को भी हमारी सहानुभूति के क्षेत्र के भीतर लाने का प्रयत्न किया है। लक्ष्मण के चरित्र में कुछ दोष से प्रतीत होते हैं। कवि ने उन्हें अधिक उग्र रूप मे उपस्थित किया है। गुप्त जी की करुणा तथा सुकुमार कल्पना का सबसे अधिक भाग उर्मिला को मिला है। गुप्त जी आधुनिक आन्दोलनों से सदा प्रभावित होते रहे हैं। इसका प्रभाव आपके ग्रन्थों पर भी पड़ गया है—साम्यवाद, उपयोगितावाद, विनत-विद्रोह आदि साकेत में भी दिखाई पड़ते हैं। यशोधरा नामक ग्रन्थ मे देवी यशोधरा का स्वरूप बहुत ही गौरव-पूर्ण है। अमिताभ बुद्ध को भी उसके सामने एक बार तो झुकना ही पड़ता है। बुद्ध

के पुत्र राहुल को भी कवि ने बड़ी सहानुभूति से उपस्थित किया है।

पलासी का युद्ध, मेघनाद-वध, विरहिणी व्रजाङ्गना आदि पुस्तकें भी आपने अनूदित की हैं। उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद भी आपने प्रस्तुत किया है। आपकी नवीन ढंग की रचनाएँ झकार में सगृहीत हैं।

खड़ी बोली — नवीन काल-१

(संवत् १९७५-१९९३)

प्रस्तावना

किसी समाज में साहित्य की स्वतत्र सत्ता नहीं है। वह तो केवल समाज विशेष की अन्तरात्मा की प्रतिध्वनि है। अन्तरात्मा जिन जिन प्रभावों से प्रभावित होगी उनकी प्रतिध्वनि साहित्य में भी सुनाई देगी। इस नवीन काल में हमारे समाज पर कुछ विशेष प्रभाव पड़ चुके थे, जिनका फल हमारे साहित्य पर भी पड़ा। इनका निर्देश असामयिक न होगा। सबसे पहले हम राजनीतिक परिस्थितियों को देख लें। बहुत प्राचीन काल में ये परिस्थितियाँ समाज को किसी गहराई तक नहीं प्रभावित करती थी, पर आज का समाज राजनीति से प्रतिक्षण प्रभावित होता रहता है। हमारे यहाँ अंग्रेजी शासन का जमना एक बहुत बड़ी घटना थी। अव्यवस्था और अन्धकार के युग के बाद सुव्यवस्था और प्रकाश का युग पाकर लोग आनन्दित हो उठे थे। इस राज्य से सभी सन्तुष्ट थे। "अब नवाबी नही है, अंग्रेजी है" ऐसे वाक्य जनता की भावनाओं की ओर सकेत करते हैं। पर इन भावनाओं पर आघात पहुँचा, और बहुत शीघ्र पहुँचा। बग-भंग के आन्दोलन ने देश को एक कोने से दूसरे कोने तक कॅपा दिया। कांग्रेस के द्वारा जनता जगाई जा रही थी।

गोखले, तिलक, एनी बिसेन्ट और मालवीय जी ऐसे नेताओं के द्वारा जनता को आत्मविश्वास का पाठ पढ़ाया जा रहा था। इन भावनाओं को योरोपीय महायुद्ध से बहुत सहायता मिली। भारतीय सिपाही योरोप ऐसे देश में बड़ी वीरता से लड़े। तुर्क सिपाही बड़े भयानक योद्धा प्रसिद्ध हैं पर उन्हे भी उस युद्ध में, भारतीय सिखों और गोरखों के सामने नीचा देखना पड़ा। अभी तक इतिहास में हमें पढ़ाया जाता था कि तुम निर्बल हो अतः तुम्हें दूसरों के शासन की आवश्यकता है। योरोपीय महायुद्ध ने हमे सिखाया कि हमारी पराधीनता का कारण हमारी निर्बलता नहीं है, इस प्रकार आत्मविश्वास के भाव जगने लगे। युद्ध के बाद की कुछ घटनाओं ने लोगों को और भी क्षुब्ध किया। आन्दोलन बल पकड़ता गया। इन सब बातों का हमारे साहित्य पर भी प्रभाव पड़ रहा है। हमारे साहित्य में दुःखवाद की जो एक झलक दिखलाई पड़ने लगी है उसका भी कारण यही है कि हम अब तक अपने उद्देश्यों मे सफल नही हो पाये हैं। इस युद्ध का एक और भी प्रभाव पड़ा। लोगो का ध्यान योरोपीय देशो की ओर आकर्षित हुआ। रूस, जर्मनी तथा फ्रांस के साहित्यों का अध्ययन प्रारम्भ हुआ तथा उस साहित्य के अनुवाद का क्रम। योरोपीय साहित्य में कुछ विशेषताएँ हैं जो हमारे लिए नई हैं। योरोपीय साहित्यिकों ने व्यापक जनता की मनोवृत्तियों का उद्घाटन किया है इन सबका प्रभाव हमारे साहित्य पर भी अब पड़ने लगा है। हमारे यहाँ भी योरोपीय

ढग की परिस्थितियाँ अब उत्पन्न होने लगी हैं।

हमारी साहित्यिक सहानुभूति अब कुछ साधारण जनता की ओर भी हो चली है। जहाँ पहले हम प्रारम्भ करते थे—'एक राजा था' वहाँ अब यों भी प्रारम्भ करने लगे हैं—'एक किसान था' अथवा 'एक मजदूर था'।

योरोप के सम्पर्क का प्रभाव हमारे समाज पर भी पड़ रहा है। हमारे समाज का सगठन आध्यात्मिकता को दृष्टि में रख कर हुआ है। योरोपीय समाज भौतिकता को अधिक महत्त्व देता है। हमारी विवाह इत्यादि की प्रथाएँ सयम को दृष्टि में रखकर चलती हैं उनके यहाँ वासना को। अब योरोपीय सम्पर्क से हमारे नवयुवकों को प्रतीत होने लगा है कि जिस विवाह की व्यवस्था माता-पिता के द्वारा की जाती है वह नीरस है। ऐसी मनोवृत्तियों का फल हमारे साहित्य मे भी दिखाई पड़ता है। किसी भी कहानी को देख लीजिए, वह एक स्वच्छन्द प्रेम की कथा होगी। आधुनिक युग की सबसे बड़ी विशेषता उसका विज्ञानवाद या बुद्धिवाद है। परम्परा से प्राप्त मिथ्या सस्कारों की रूढ़ियाँ शिथिल हो रही हैं। केवल विश्वास पर मान लेने की अन्धपरम्परा उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती है। इन सबका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व के साहित्य पर पड़ा है। हमारा अपना साहित्य इनसे अछूता नहीं रह सकता। लोक को अधिक महत्त्व देने से मनुष्यों को भगवान की चिन्ता करने का अब उतना समय नहीं मिलता, इसीलिये अब भक्ति के गीत नहीं गाये जाते। लोगों को स्वर्ग की उतनी चिन्ता नहीं है

जितनी इसी संसार को स्वर्ग बनाने की।

इन सब विशेषताओं की ओर सकेत कर अपने वर्तमान साहित्य के अध्ययन की ओर हम अग्रसर होते हैं।

गद्य-साहित्य

इस क्षेत्र में हरिश्चन्द्रजी के समय से काम हो रहा है। उस समय के लेखकों की भाषा उस भाषा से प्रभावित रहती थी जिसका कि लेखक विशेष पंडित होता था। उदाहरण के लिए प० अम्बिकादत्तजी व्यास की भाषा पर संस्कृत-पाण्डित्य का प्रभाव सदा लक्षित होता है। उसी प्रकार उर्दू की ओर से आने वाले लेखकों की भाषा पर उस भाषा का प्रभाव मिलता है। इस दोष के साथ ही साथ उस समय के लेखकों की भाषा में कुछ प्रान्तीय प्रयोग भी अधिक रहते थे। भारतेन्दु की भाषा मे भी काशी के स्थानीय प्रयोग दिखाए जा सकते हैं। पं० प्रतापनारायण मिश्र की भाषा में बैसवाड़ी का पुट सदा बना रहता था। धीरे धीरे भाषा से ये त्रुटियाँ दूर होने लगीं और उसका एक शिष्ट सामान्य रूप निखर कर सामने आने लगा। इसी समय एक नई विपत्ति उठ खड़ी हुई। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को हिन्दी लिखने का शौक सवार हुआ। हिन्दी भी पढने से या सीखने से आती है अथवा उसकी भी कोई स्वतंत्र सत्ता है, इन बातों को सोचने समझने का किसे अवकाश था। अंग्रेजी के भरोसे लोगों ने लिखना प्रारम्भ किया। ऐसे लोगों ने अंग्रेजी के प्रयोगों का अनुवाद करना शुरू किया।

ऐसी हिन्दी लोगों के लिए विदेशी हो चली। आज के भी अनेक हिन्दी-लेखको की भाषा में अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। यह प्रभाव शब्दों और मुहावरों तक ही नहीं है, वाक्यो की गठन तक पर पड़ रहा है। कठिनाई तो यह है कि लोग इसे दोष भी नहीं मानते। द्विवेदीजी के समय में लोगों ने व्याकरण की उपेक्षा भी करना प्रारम्भ कर दिया था। द्विवेदीजी ने बड़े पुष्ट हाथों से इस 'अनस्थिरता' को दूर किया। द्विवेदीजी के प्रभाव से भाषा का रूप स्थिर हुआ। क्रमश. उसकी अभि-व्यंजन-शक्ति बढ़ने लगी। अब हमारी भाषा को ऐसा स्वरूप प्राप्त हो चुका है जिसके भीतर जटिल से जटिल तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का निर्वाह हो सकता है। कुछ विशिष्ट लेखकों की भाषा में अपनापन भी आने लगा है।

अब हम अपने गद्य-साहित्य का अध्ययन कुछ खण्डों मे विभक्त करके करेंगे। पहले गद्य के कुछ प्रमुख लेखकों को लिया जायगा।

बाबू जयशंकर प्रसाद—आपका सस्कृत-साहित्य का अच्छा अध्ययन था। फलत. आपकी भाषा सस्कृत-पदावली से गर्भित है। आप उर्दू शब्दो का यथाशक्ति पूर्ण वहिष्कार रखते थे। मुहावरों इत्यादि से भाषा को सजाने आदि के पक्ष में भी आप नहीं थे। हाँ, अलकारों का प्रयोग आप अवश्य करते थे। यह भाव को स्पष्ट करने तथा जाग्रत् करने के लिये होता था। आपका प्रकृति-निरीक्षण उपमान-योजना में बहुत सहायक होता था। आपकी भापा स्निग्ध तथा गम्भीर है। शब्दो के द्वारा

चित्र खींचने की क़ला आप में अद्भुत थी। हृदय के भावों को बड़ी सफलता से सामने रखते थे। संस्कृत की रस-सिक्त पदावली की सहायता से आपने एक स्वतंत्र शैली की उद्भावना की जो आपकी अपनी है।

बाबू प्रेमचन्द्रजी :—ये हिन्दी के इने गिने सिद्ध लेखकों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। साधारण बोल-चाल की भाषा पर जैसा आपका अधिकार था वैसा और किसी का नहीं है। आप अपनी भाषा को सदा जीवन के सम्पर्क मे बनाये रखते थे। हम कहे तो कह सकते हैं कि उनकी वाणी में हमारे समाज की बोली स्पष्ट सुनाई पड़ती थो। ठीक स्थान पर ठीक प्रयोग करना जैसा आप जानते थे वैसा और कौन जानता है। संस्कृत के अधिक शब्दो का प्रयोग करना न आपको रुचता था और न आपकी भापा में फबता था। आपकी अपनी एक भाषा थी जिस पर आपका पूर्ण अधिकार था।

राय कृष्णदासजी :—आपकी भाषा में अनेक शैलियाँ प्राप्त होती हैं। पर आपकी सबसे प्रिय शैली वही है जिसे काशी-शैली कह सकते है। आपकी भाषा बाबू श्यामसुन्दरदास की भाषा के समान भारी नहीं पड़ती। इसमें स्निग्धता तथा लाघव अधिक है। अपनी कहानियो में आप भाषा की साधारण सतह पर उतर आते हैं। ठेठ शब्दों के प्रयोग से आपकी भाषा अधिक मीठी हो जाती है। छोटे छोटे वाक्यो के द्वारा भाव उत्पन्न करने की क्षमता आपमें अद्भुत है। यत्र तत्र आलकारिक प्रयोग भी आपने किए हैं। 'साधना' आपकी बहुत सफल रचना है।

श्री वियोगी हरि :—इनके हृदय की सबसे बड़ी विशेषता उसकी भावुकता है। यही इनकी भाषा-शैली में प्रतिफलित हुई हैं। आवश्यकता के अनुसार अनेक रूप धारण करती हुई भी इनकी भाषा इस विशेषता को सदा लिये रहती है। कभी कभी आप पाण्डित्य-प्रदर्शन की ओर भी बहक जाते हैं। आपकी भावावेश की शैली सबसे अधिक समर्थ हुई है। इसमें वाक्य छोटे छोटे होते हैं तथा पदावली परिचित। पाण्डित्यपूर्ण शैली में अलकारों का अधिक प्रयोग होता है, अनुप्रास का आग्रह बढ़ जाता है तथा सस्कृत पदावली का बाहुल्य हो जाता है।

श्री चतुरसेन शास्त्री:—आपकी भाषा की अनेक शैलियाँ हैं जिन पर आपका सच्चा अधिकार है। पर आपकी सबसे प्रिय शैली वह है जिसमें प्रचलित शब्दों को अधिक प्रश्रय दिया जाता है। आप स्थानीय मुहावरों के प्रयोग के पक्ष में भी हैं। आपकी भाषा में लाघव और स्फूर्ति रहती है। 'अन्तस्तल' नामक पुस्तक मे आपने हृदय के भावों को बड़ी सफलता से दिखाया है।

मुंशी शिवपूजन सहाय :—मुशी जी बहुत पुराने और मँजे हुए लेखक हैं। आपकी भाषा की तीन शैलियाँ हैं। अपनी अखबारी भाषा में आप साधारण सतह पर रहते हैं। कहानियों की भाषा में पण्डित्य और प्रदर्शन की ओर चले जाते हैं। 'देहाती दुनिया' नामक पुस्तक में लेखक ने एक नवीन ही शैली की ओर सकेत किया है। इसमें आपने देहाती प्रयोगों में से बहुत से ऐसे शब्द लिये हैं जो भावों को व्यक्त करने मे बहुत

ही समर्थ हैं। इनकी रुचि सजावट और बनावट की ओर अधिक रहती है। कहावतों और अलकारों का भी अधिक प्रयोग हुआ है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' :— इनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी उमग। यौवन की मादकता, आत्म-विश्वास, दुःखो के वातावरण से ऊपर उठने की शक्ति, आशा-वाद के दर्शन सर्वत्र होते रहते हैं। भाषा में लेखक अलङ्कारों का भी प्रयोग करता है साम्य-स्थापन की लेखक मे अच्छी समता है। वाक्यविन्यास में प्रभाव को दृष्टि में रख कर कर्त्ता, क्रिया आदि के स्थानो में भी परिवर्तन कर दिया गया है। आपकी रुचि भाव को मूर्त रूप देने की ओर अधिक रहती है।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी :— इनकी शैली आलोचनात्मक है। भाषा विचारों तथा भावों दोनो पर दृष्टि रखती है। आप शब्दों का प्रयोग तोल तोल कर करते हैं। शब्दों की व्याप्ति का पूरा ध्यान रक्खा जाता है। आपकी शैली में व्यंग्य की भी अच्छी स्थापना हुई है।

कहानी तथा उपन्यास

इस काल में इस क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई। हमारा कहानी-साहित्य अब भली भाँति उन्नति कर चुका है। अनेक लेखक इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं। कहानियो के भीतर आने वाला जीवन क्रमशः व्यापक हो रहा है। कहानी-कला भी विकास की ओर है। उपन्यासों के क्षेत्र में अभी उतना काम नहीं हुआ है फिर भी प्रगति संतोपप्रद है।

प्रेमचंद :—इनकी कहानियों की संख्या दो सौ से ऊपर है और बड़े उपन्यासों की सख्या भी एक दर्जन के आस-पास है। बड़े उपन्यासो मे 'सेवासदन, गबन, कायाकल्प, रगभूमि, गोदान' आदि की अधिक ख्याति है। आपने उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों में अधिक कला का प्रदर्शन किया है। इनकी कहानियो में भरतीय जीवन का इतिहास है। इनकी ऐतिहासिक कहानियों में हमारा प्रचीन गौरव लक्षित होता है और इनकी आधुनिक कालीन कहानियों में हमारा आज का समाज।

इस समय के आन्दोलन का इनके साहित्य मे पूरा रूप देखा जा सकता है। इनका ग्रहण किया हुआ क्षेत्र भी बहुत व्यापक है—किसान, जमीदार, मजदूर, मिल-मलिक, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सज्जन और दुर्जन सभी इनकी कहानियों के रगमच पर आकर दर्शन दे जाते हैं। इनके पात्रो का चरित्र-चित्रण इतना सफल होता है कि हम उनसे सहानुभूति स्थापित कर लेते है। आदर्शवाद तथा कला का बहुत ही सुन्दर समन्वय आपने किया है। इनके द्वारा हमारे उपन्यासो का आदर्श समुन्नत हुआ है और हमारे साहित्य का गौरव बढ़ा है।

श्री जयशंकर 'प्रसाद' जी :—कहानियाँ तो आप बहुत दिनों से लिख रहे थे। पीछे से आपने ककाल और तितली नाम के दो उपन्यास भी लिखे। कंकाल में हमारे जीवन का वह स्वरूप प्रदर्शित किया गया है जो परदे के पीछे रहता है। लोगों को इससे कुछ क्षोभ अवश्य हुआ, पर यह चित्रण सच्चा नहीं था यह कौन कह सकता है। तितली नामक उपन्यास में चरित्र-

चित्रण उतनी सफलता से नहीं हो सका है जितनी सफलता से ककाल में। प्रसाद जी की कहानियों के 'आँधी, आकाश-दीप, प्रतिध्वनि' आदि अनेक सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रसाद जी प्रायः उन कोनों में झाँकना पसन्द करते थे जिनमें प्रायः साधारण लोग नहीं जाते। पाठक को चकित करने की ओर आपका विशेष ध्यान रहता था आपकी कहानियों में कवित्व अधिक रहता था, कथातत्त्व कम।

पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'—'भिखारिणी' तथा 'माँ' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं और मणिमाला तथा चित्रशाला प्रसिद्ध कहानी-संग्रह। आपकी कहानियाँ आपके उपन्यासों से अच्छी बन पड़ी हैं। भिखारिणी में एक प्रेमकथा दिखाई गई है। माँ मे कथा का व्यर्थ विस्तार किया गया है। आपकी अनेक कहानियों के विषय सामाजिक कुरीतियाँ तथा रूढ़ियाँ है। आपकी कहानियों को लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा:—इन्होंने कई उपन्यास तथा अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उपन्यासो में 'गढ़कुडार' सबसे प्रसिद्ध हुआ। इसमें बुंदेलखण्ड के राज-वंश की एक प्राचीन कहानी है। ऐतिहासिकता की कल्पना के साथ बड़े कौशल से रक्षा की गई है। उस काल की विशेषताओं को प्रत्यक्ष करने में लेखक पूर्ण सफल हुआ है। कथा का निर्वाह, पात्रों का चरित्र-चित्रण, भाषा का प्रयोग आदि सब दृष्टियों से उपन्यास बहुत ही उच्च कोटि का बन पड़ा है। अपने कुछ उपन्यासो की भाषा में आपने ऐसे प्रयोग किये हैं जो आपकी

भाषा के गौरव के अनुकुल नहीं हुए हैं। कुण्डलीचक तथा प्रेम-भेंट आदि अन्य उपन्यास हैं।

मुंशी प्रतापनारायण श्रीवास्तव—आपकी प्रसिद्धि 'बिदा' नामक एक उपन्यास तथा कुछ कहानियों के कारण है पर योग्यता की परीक्षा मात्रा तथा परिमाण से नहीं होती। 'बिदा' के भीतर तीन कहानियाँ समन्वित हुई हैं। चरित्र-चित्रण स्वाभाविक हुआ है। शान्ता का चरित्र आदर्श बन पड़ा है। केट ने भी प्रेम का अच्छा उदाहरण उपस्थित किया है।

जैनेन्द्र कुमार जैन—आपकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'परख' है। इसमें एक प्रेमकथा बड़ी भावुकता से वर्णित है। तपोभूमि नामक उपन्यास आपने श्री ऋषभचरण जैन के साथ मिलकर लिखा है। आपकी बहुत सी कहानियाँ भी हैं, जिनका संग्रह वातायन में निकल चुका है। इधर 'सुनीता' नाम का एक नवीन उपन्यास आपका निकला है। इसमें आपने हिन्दी को अंग्रेजी बनाने का प्रयत्न किया है।

श्री सुदर्शन जी:—कहानी-कला आपको स्वभाव से ही सिद्ध है। आपकी कथा बड़े सरल-तरल प्रवाह से अग्रसर होती है। कला का भी प्रदर्शन नहीं किया जाता। हिन्दी-कहानी-लेखकों मे आपका महत्त्व का स्थान है। सामयिक विषयो पर भी आप अच्छा लिख लेते हैं। सुदर्शन-सुधा, सुप्रभात आदि अनेक कहनी-संग्रह आपके निकल चुके हैं।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र':—आधुनिक युग की विशेषताएँ आपकी कहानियो में देखी जा सकती हैं। परदे के पीछे के

गन्दे दृश्यों को भी आप सामने लाने में नहीं हिचकते। नरक को भी रमणीय बनाने के पक्ष में हैं। इनकी राजनीतिक तथा सामाजिक कहानियाँ बड़े महत्त्व की हुई हैं। आपके विषय प्रेम तथा देशभक्ति हैं। 'चन्द हसीनों के खुतूत, दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी' आदि अनेक उपन्यास हैं। 'दोजख की आग, इन्द्र-धनुष' आदि कहानी सग्रह हैं।

चतुरसेन शास्त्री :—हृदय की प्यास, हृदय की परख, अमर-अभिलाषा आदि आपके उपन्यास हैं। आपकी कहानियाँ अक्षत तथा रजकण में सगृहीत हैं। आपकी कहानियों में उत्सुकता सदा बनी रहती है। अमर-अभिलाषा के शृगारी चित्रों से लोगों का उतना सतोष नहीं हुआ।

राय कृष्णदास :—आपकी कहानियाँ ऐतिहासिक तथा सामाजिक हैं। आपकी कृतियो मे काव्य-कला, चित्र-कला तथा उपन्यास-कला का अच्छा समिश्रण रहता है। कथोपकथन में बहुत ही स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हुआ है।

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' :—'द्विज' जी बहुत भावुक हैं, कहानियों में भी, काव्य में भी। आप एक नए समाज की कामना करते हैं जिसके स्वरूप का प्रस्ताव आपने अपनी कहानियों मे किया है। इनके पात्र भी प्राय' भावुक हैं।

विनोदशंकर व्यास :—जीवन की जिन मर्मस्पर्शिणी बातों का आप पर प्रभाव पड़ा है उनके सजीव चित्र आपने अङ्कित किये हैं। ये जीवन के छोटे छोटे मार्मिक चित्र हैं।

अन्य कहानी लेखक :—विहार के अवधनारायण जी

ने विमाता नाम का एक सुन्दर उपन्यास लिखा है। यह पुस्तक रामायण का एक दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित करती है। पुस्तक वेदनात्मक अनुभूतियों से भरी पड़ी है। चण्डीप्रसाद हृदयेश को अब लोग भूलने लगे हैं। इनका मगल-प्रभात एक प्रसिद्ध उपन्यास है। कहानियों का सग्रह नदन-निकुज तथा वनमाला मे है। आपकी भाषा व्यर्थ ही भारी हो गई है। गिरजादत्त शुक्ल गिरीश ने 'बाबू साहब' नामक एक प्रसिद्ध उपन्यास लिखा है। बाबू शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' भी अच्छी बनी है। मोहनलाल महतो, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, ऋषभचरण जैन, प० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, प० सद्गुरुशरण अवस्थी, सियारामशरण गुप्त आदि अनेक कहानी-लेखक इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं। श्री निराला जी ने भी इधर कई सुन्दर उपन्यास लिखे हैं। पूरी आशा होती है कि आप इस क्षेत्र में अपने लिये एक सम्मानित स्थान बना लेंगे। इधर के कुछ वर्षों मे भी कुछ कहानी-लेखक सामने आये हैं। इनमें अज्ञेय जी ऐसे लोगों को देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है। इधर कुछ लेखिकाएँ भी इस क्षेत्र में आने लगी हैं, जिनमें श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान तथा श्रीमती शिवरानी देवी मुख्य हैं। कुछ लोगों ने प्रतिनिधि-कहानी-लेखकों की रचनाओं के सग्रह भी प्रस्तुत किये हैं। जिनमें मधुकरी, गल्पाजलि, गल्प-समुच्चय, हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ, हिंदी की आदर्श कहानियाँ आदि सग्रह अच्छे बन पड़े हैं। हास्य रस के क्षेत्र में अन्नपूर्णानन्द जी तथा जी० पी० श्रीवास्तव अच्छा काम कर रहे हैं। और भी

कुछ लेखक हमें हँसाते रहते हैं। कौशिक जी की 'दूबे जी की चिठ्ठियाँ' हँसी हँसी मे कुछ काम भी करती हैं। प० हरिशकर शर्मा के 'चिड़िया घर' तथा श्री गुलाब राय के 'ठलुआ क्लब' से भी लोगो का मनोरंजन हुआ है।

समालोचना

पहले कहा जा चुका है कि समालोचना का मार्ग प्रशस्त नही हो पाया था। अभी हम मार्ग ढूँढ़ने ही में लगे थे। ऐसे समय में पं० रामचन्द्रजी शुक्ल ने आलोचना के सत्य-सिद्धान्त सम्मुख रख कर तथा कुछ प्रमुख कवियो पर आलोचनात्मक लेख प्रस्तुत कर हमें मार्ग दिखाया। आपने हमारी प्राचीन शैलियों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। आपके सिद्धान्तो को हम इन शब्दों में देख सकते हैं, "जैसा कि हम पहले कह आये हैं, साहित्य के शास्त्र-पक्ष की प्रतिष्ठा काव्यचर्चा की सुगमता के लिए माननी चाहिए; रचना के प्रतिबन्ध के लिए नहीं। इस दृष्टि से जब हम अपने साहित्य-शास्त्र को देखते हैं, तब उसकी अत्यन्त व्यापक और प्रौढ़ व्यवस्था स्वीकार करनी पड़ती है। शब्द-शक्ति और रस-पद्धति का निरूपण तो अत्यन्त गम्भीर है। उसकी तह में एक ऐसे स्वतत्र और विशाल भारतीय समीक्षा-भवन के निर्माण की सम्भावना छिपी हुई है जिसके भीतर लाकर हम सारे संसार के साहित्य की आलोचना अपने ढंग पर कर सकते हैं"। इनकी साहित्य के सूक्ष्म सिद्धान्तों की व्याख्याएँ इतनी प्रौढ़ तथा विस्तृत हैं कि उनके अन्तर्गत योरोप के नवीन से नवीन साहित्य-सिद्धान्तों का समावेश हो सकता

है। भारतीय तथा योरोपीय समीक्षा-शैलियों का बुद्धिसगत समन्वय करके शुक्ल जी ने हमारे साहित्य को गौरवान्वित किया है। हमारे साहित्य मे सम्यक् प्रकार से आलोचना-पद्धति की स्थापना करने का श्रेय शुक्ल जी ही को है। इस आदर्श कार्य के अतिरिक्त इस क्षेत्र में शुक्ल जी के द्वारा और भी सेवाएँ हुई हैं। तुलसी, जायसी तथा सूर की आलोचनाओं का बहुत महत्त्व है। अभी कुछ दिन हुए साहित्य-सम्मेलन में आपने काव्यकला पर एक निबन्ध पढा था जो किसी भी साहित्य का मस्तक ऊँचा कर सकता है।

हमारे साहित्य में छायावाद के नाम से बहुत ही मनमानी हो रही थी। आपने 'काव्य मे रहस्यवाद' नामक एक गवेषणा पूर्ण पुस्तक लिखकर साहित्यिक क्षेत्र से एक बहुत बड़ी धोखा-धडी दूर की। आपकी समीक्षा-शैली सर्वत्र मार्मिक तथा गवेषणा-पूर्ण हुई।

बाबू श्यामसुन्दरदास :—आपने साहित्य-समीक्षा के सिद्धान्तों पर साहित्यालोचन नामक एक पुस्तक लिखी थी। इधर आपने उसका एक सशोधित सस्करण निकाला है। इसमे एक नवीन विद्यार्थी को आलोचना के साधारण सिद्धान्त मिल सकते हैं। आपकी सेवाओं से हमारे साहित्य को लाभ हुआ है। आपकी पुस्तकें साधारण विद्यार्थियों के काम की हैं। आपने हिन्दी-साहित्य का एक इतिहास भी प्रस्तुत किया है। समय समय पर कवियों पर आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं।

अन्य लेखक :—अब इस क्षेत्र में काम चल निकला है

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने 'हिन्दी-साहित्य-विमर्ष और विश्व-साहित्य' पुस्तकें प्रस्तुत कर साहित्य की अच्छी सेवा की है। प० रमाकान्त त्रिपाठी ने हिन्दी-गद्य-मीमांसा मे हमारे गद्य-लेखको की शैलियों पर प्रकाश डाला है। गद्य-शैलियो की आलोचना पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा तथा प० सद्गुरुशरण अवस्थी ने भी अपनी पुस्तकों में की है। अवस्थी जी के 'तुलसी के चार दल' की भी अच्छी प्रशसा हुई है। रामकृष्ण शुक्ल ने प्रसाद की नाट्यकला पर एक पुस्तक लिखी। आशा है पुस्तक के नवीन संस्करण मे 'प्रसाद' जी के मुख्य नाटको स्कन्धगुप्त तथा चन्द्र-गुप्त पर भी प्रकाश डाला जायगा। प्रसाद जी की काव्य-कला पर रामनाथलाल सुमन ने भी एक पुस्तक अभी लिखी है। और भी कुछ लोग प्रसाद जी पर लिख रहे हैं जो प्रकाश में आवेगा। जनार्दनप्रसाद झा ने प्रेमचन्द्र की उपन्यास-कला लिखकर इस ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। इधर और भी आलोचनात्मक पुस्तकें निकली हैं। 'बिहारी को वाग्विभूति' तथा 'पद्माकर-पचामृत' आदि पुस्तकें आशाप्रद हैं।

नाटक

बंग-साहित्य में इधर जो नाटकों की रचना हो रही थी उस पर बहुत कुछ पाश्चात्य नाटक-शैली का प्रभाव था। इन नाटकों का अनुवाद हमारी भाषा में भी हुआ। इससे पहले भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने तथा लाला श्री निवासदास ने अच्छा काम किया था। बाबू राधाकृष्णदास का महाराणा प्रताप नाटक लोगों ने बहुत पसन्द किया। श्री माधव शुक्ल के महाभारत नाटक

को भी लोगों ने उत्साह से अपनाया। इसके पश्चात् कुछ दिनों तक पारसी कम्पनियों के नाटकों का बोलबाला रहा। इन कम्पनियों में हिन्दी-नाटकों का सर्वप्रथम प्रवेश कराने का श्रेय श्री नारायणप्रसादजी बेताब को है। इनका महाभारत नाटक सबसे पहले अलफ्रेड कम्पनी में अभिनीत हुआ। इसी प्रकार के नाटकों में प० राधेश्यामजी कथावाचक, प० हरिकृष्ण जौहर, आगाहश्र जी की गणना है। अब सक्षेप में साहित्यिक नाटकों का परिचय दिया जाता है।

बाबू जयशंकरप्रसादजी :—आपने अपने नाटक के स्वरूपों का ढाँचा बहुत कुछ सस्कृत-नाट्यशास्त्र की शैली पर रक्खा है। पर प्राचीनता को बहुत कुछ नवीन रूप दे दिया गया है। उदाहरण के लिये प्रस्तावना तथा नान्दी आदि की योजना आपने नहीं की है। भरतवाक्य के ढग का एक पद्य इनके अनेक नाटकों में मिलता है। आपके नाटक ऐतिहासिक तथा पौराणिक हैं। नागयज्ञ ऐसे नाटकों को हम पौराणिक कह सकते हैं। पर इनमें भी प्रसाद ने अपनी कल्पना से बहुत से उलट-फेर किए हैं। ऐतिहासिक नाटकों में चन्द्रगुप्त, स्कन्ध-गुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी आदि को ले सकते हैं। प्रसाद जी ने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास के पडितों की खोजों तथा अपने स्वतन्त्र अन्वेषण का पूरा उपयोग किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नाटककार अपनी कृतियों से प्रचीन भारतवर्ष के गौरव को हमारे सामने उपस्थित करने मे सफल हुआ है।

इनके पात्रों के हम दो विभाग कर सकते हैं—साधारण पात्र

तथा विशेष पात्र। साधारण पात्रों की प्रसाद ने कुछ उपेक्षा कर दी है। विशेष पात्रों में या तो दुर्गुणों की या सद्गुणों की बहुत ऊपर उठी हुई विशेपता पाई जाती है। ऐसे पात्रो का चित्रण बहुत सफल हुआ है। इनके अनेक पात्रों का अस्तित्व कभी कभी इनकी भावनाओं से भी प्रभावित हो जाता है। बहुत से पात्रों को केवल इसीलिए नियतिवादी होना पड़ा है कि उनका रचयिता नियतिवादी है। इनके पात्रो की दार्शनिकता भी कभी कभी खटक जाती है। भाषा-प्रयोग में भी कवि ने इस वात पर ध्यान नहीं दिया है कि प्राचीन काल में भी साधारण पात्रों तथा विशिष्ट पात्रो में भिन्नता रहती रही होगी। अपने कुछ पात्रों के द्वारा इन्होंने मानवता को बहुत ऊपर उठाने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिये चन्द्रगुप्त नाटक की कल्याणी उपस्थित की जा सकती है। प्रसाद जी ने अनेक दुष्ट पात्रों की प्रकृति में आकस्मिक परिवर्तन किये हैं। यह बहुत ही अस्वाभाविक हुआ है। इनके अनेक पात्रों मे क्षमादान की प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर भी हमे आश्चर्य होता है। कुछ ऐसे दृश्य भी आपने उपस्थित किए हैं जिन्हे प्राचीन आचार्यों ने वर्जित माना है, उदाहरण के लिए हत्या के प्रसंग लिये जा सकते हैं। इनके कथनोपकथन भी कभी कभी अस्वाभाविक हो गये हैं। अनेक पात्रो का लम्बे लम्बे भाषण देना तथा प्रसाद जी की भाषा में बोलना नाटकों के विकास मे बाधक हुआ है। अपने नाटकों के बीच में सुन्दर हास्य की योजना करते में कवि सफल नही हुआ है। एक आध बार पेटू ब्राह्मणों को उपस्थित कर लोगों को हँसाने का प्रयत्न किया गया

है, पर यह तो बहुत पुरानी बात है। इनके नाटकों के अभि-नयोपयोगी होने में सन्देह ही है। अनेक कठिनाइयों का सामना करके उनके अभिनय किये गये हैं। पर इन प्रयोगों से यह भी स्पष्ट सिद्ध हो गया कि कवि ने अभिनय की आवश्यकताओं पर उतना ध्यान नहीं दिया।

अन्य नाटककार:—उग्र जी ने महात्मा ईसा नामक नाटक को अभिनय पर ध्यान रख कर लिखा है। इसके चरित्र-चित्रण में भी बहुत स्वाभाविकता है। यह नाटक अपने पात्रों की विशेषताओं तथा भावों के कारण पाठक पर गम्भीर प्रभाव डालता है। आपके एकांकी नाटकों में 'अफजल-वध' बहुत अच्छा हुआ है। 'उजवक तथा चार वेचारे' प्रहसन भी सफल हुए हैं। उग्र जी शिष्ट हास्य की अच्छी सामग्री उपस्थित करते हैं। पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त के 'वरमाला' नाटक की कथा मारकण्डेय पुराण से ली गई है। इसमें मूक अभिनय की भी योजना की गई है, पर इस योजना से कुछ अस्वाभाविकता आ गई है। यह नाटक बडी सुविधा से खेला जा सकता है। माखनलाल जी चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' बहुत प्रसिद्ध है। इस नाटक का अनेक बार सफल अभिनय हो चुका है। नाटक के प्रारम्भ में विद्यार्थियों को अमरकोष का पाठ पढ़ाना बहुत अस्वाभाविक हुआ है। लेखक को इतना ही जानना चाहिए था कि इस कोष की रचना बहुत पिछले काल में हुई है। प० बदरीनाथजी भट्ट ने चन्द्रगुप्त, तुलसीदास, वेन-चरित्र आदि अनेक नाटक लिखे हैं। आपके 'दुर्गावती' नामक नाटक ने बहुत

प्रसिद्धि पाई है। आपकी हास्य-योजना कभी कभी अप्रासंगिक हो गई है। गीत बहुत नीची श्रेणी के रखे गये हैं। आप हास्य रस भी अच्छा लिख लेते थे। कानपुर के प्रताप में गोलमाला-नन्द के नाम से लिखा करते थे। प० लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'अशोक, सन्यासी, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, सिन्दूर की होली' आदि अनेक नाटक लिखे हैं। आपके नाटकों को देखकर बड़ी प्रसन्नता तथा आशा होती है। सामाजिक नाटकों की ओर आपकी अधिक रुचि है। जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का 'प्रताप प्रतिज्ञा' नामक एक नाटक है। इसमें अभिनय पर ध्यान दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक समाप्त करने में कुछ शीघ्रता कर दी गई है। श्री सुदर्शनजी ने 'अजना' तथा एकांकी 'चन्द्रगुप्त' लिखकर इस क्षेत्र में योग दिया है। रामकुमार जी वर्मा ने भी कुछ नाटक लिखे हैं। जी. पी. श्री वास्तव ने भी इस क्षेत्र में कुछ काम किया है। इधर सुमित्रानन्दन पन्त भी नाटककार के रूप मे सामने आये हैं।

पत्र तथा पत्रिकाएँ

सरस्वती के प्रकाशन के पश्चात् इस क्षेत्र में एक बाढ़ सी आई। सरस्वती के अनुकरण पर 'कमला, इन्दु, लक्ष्मी, प्रभा, प्रतिभा, शारदा, मनोरमा, मर्यादा' आदि अनेक पत्रिकाएँ निकलीं। इनमे से अनेक तो कुछ ही काल मे समाप्त हो गईं। इस समय भी सरस्वती, विशाल भारत, माधुरी, हंस, सुधा, वीणा आदि अनेक पत्रिकाएँ अच्छा काम कर रही हैं। धार्मिक क्षेत्र में कल्याण का बहुत ही महत्त्व है। काशी की

नागरी-प्रचारिणी पत्रिका त्रैमासिक रूप से निकलती है। 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' की मुखपत्रिका हिन्दुस्तानी भी अच्छा काम कर रही है। काशी के विद्यापीठ से भी एक अच्छी पत्रिका निकलती है। प्रयाग के विज्ञान के लेख भी अच्छे होते हैं। कुछ पत्रिकाएं वडे सुन्दर रूप में सामने आई थीं पर थोड़े ही समय में दृष्टि से ओझल हो गई। उदाहरण के लिये त्यागभूमि ऐसी पत्रिकाओ की सुध हम बहुत दिनों तक नहीं भूल सकते। अनेक जातीय पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं। साप्ताहिक पत्रो मे भी अनेक अच्छे हैं। प्रताप ऐसे पत्रों का वहुत ही महत्त्व है। दैनिक पत्रो के चेत्र में 'आज, प्रताप, वर्तमान, विश्वमित्र' आदि अच्छा काम कर रहे हैं। रगमच से सम्बन्ध रखने वाले भी कई पत्र इधर प्रकाशित हुए हैं। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि फिजी ऐसे दूर देश में फिजी-समाचार ऐसे हिन्दी पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। कई बालोपयोगी पत्र भी निकल रहे हैं, जिनमें 'बालक, बालसखा, वानर, शिशु आदि मुख्य हैं। अनेक सम्पादकों ने हिन्दी-साहित्य की अच्छी सेवा की है। उदाहरण के लिये गणेशशकरजी विद्यार्थी तथा पराड़-करजी और गर्देजी ऐसे महानुभावो ने अपनी सेवाओ से हमारे साहित्य को बहुत आगे बढ़ाया है।

अनुवाद और अनुवादक

इस क्षेत्र में अच्छा काम हो रहा है। पर बहुत से लोग केवल अर्थ-दृष्टि से अनावश्यक पुस्तकों के अनुवाद का ढेर लगा रहे हैं। वहुत से लेखक अनुवाद के गम्भीर उत्तरदायित्व

को नहीं समझते। ये भाषा को समझने की योग्यता न रखने पर भी कुछ कर निकलते हैं। इन्हें यह तो समझना ही चाहिए कि अनुवाद करना मौलिक रचना से भी अधिक कठिन है। इस क्षेत्र में रामचन्द्रजी वर्मा तथा रूपनारायण पाण्डेय ऐसे पुराने अनुवादक अभी डटे हैं। वर्माजी अंग्रेजी, बँगला, गुजराती, मराठी, उर्दू आदि अनेक भाषाओं से अनुवाद करते हैं। आप मूल के भावों का पूर्ण ध्यान रखते हैं और हिन्दी के शिष्ट रूप की भी रक्षा करते रहते हैं। प० रामचन्द्रजी शुक्ल ने भी अनेक अनुवाद किए हैं। आपने राखालदास के शशाङ्क उपन्यास का अच्छा अनुवाद किया है। प० ऋषीश्वरनाथ भट्ट का कादम्बरी का अनुवाद भी बहुत सफल हुआ है। गीता प्रेस से भी अनेक संस्कृत के ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। प० लक्ष्मीधर वाजपेयी ने मराठी से अनेक पुस्तकों के अनुवाद किये है। धन्यकुमार जैन श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ग्रन्थों का अनुवाद कर रहे हैं। गुजराती से भी रामचन्द्र वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय, काशीनाथजी त्रिवेदी ने अनेक पुस्तकों के अनुवाद किये हैं। अंग्रेजी से भी अनुवाद करने का क्रम चल रहा है। इस क्षेत्र में अनेक लोग काम कर रहे है। जिनके नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं।

खड़ी बोली—नवीन काल-२

(सं० १९७५-१९९४)

पद्य

कोई भी कवि अपनी भावनाओं को समाज से ग्रहण करता है। इसीलिए किसी भी देश के साहित्य में उसके समाज के स्वरूप को देखा जा सकता है। अपने आधुनिक काव्य की विशेषताओं का परिचय भी हमें अपने समाज की विशेषताओं को परखने से ही मिल सकता है। नवीन शिक्षा के विस्तृत प्रचार से लोगों की महत्त्वाकांक्षाएँ जाग्रत् हो गई हैं। पर राज-नीतिक परिस्थितियाँ उनके अनुकूल नहीं पड़तीं। पश्चिम के स्वच्छन्द सामाजिक विचारों की भावनाओं से लोग प्रभावित हो चुके हैं। पर अपने समाज की रूढ़ियों में बँधे रहने के कारण क्रियात्मक रूप में आगे बढ़ने में असमर्थ हैं। आर्थिक परि-स्थितियाँ भी सुख से जीवन निर्वाह करने योग्य नहीं हैं। ये ही कारण हमारे काव्य मे मिलने वाले दुःखवाद की ओर सकेत करते हैं। शृङ्गारी रचनाओं के भीतर भी एक प्रकार की कथा बहुत प्राचीन काल से प्राप्त होती रही है। जो हमें प्रिय लगता है, जिससे हमारे जीवन में सरसता बनी रहती है उसके वियोग में यदि हम दुखी और खिन्न हों तो कौन आश्चर्य है, पर हमारे साहित्य मे इस विकलता की जो बाढ़ आई है वह हमें

कुछ आश्चर्य में अवश्य डालती है। हम निरालाजी के दुःख का कारण ऐसी पंक्तियों से समझ सकते हैं:—

एक दिन थम जायगा, रोदन तुम्हारे प्रेम अंचल में।

पर महादेवीजी की ऐसी पंक्तियों की दर्शनिकता साधारण लोगों के लिये कुछ अपरिचित सी लगती है:—

तुझको पीडा में ढूँढ़ा, तुझमें ढूँढूँगी पीड़ा।

यदि किसी अभाव के कारण दुख है तो उसकी प्राप्ति से अथवा सान्निध्य से उस दुःख का अवसान हो जाना ही उचित है। रोने की भी लत पड़ जाना अच्छा नहीं। एक प्रकार के दुःखवाद का अथवा विरक्तिवाद का सम्बन्ध उसी पुरानी वैराग्य वृत्ति से है जिसे हम सत-कवियों की रचनाओं में देखते आते हैं। रामकुमारजी की ऐसी उक्तियाँ उसी प्राचीन परम्परा की ओर सकेत करती हैं:—

"क्या शरीर है? शुक्र धूल का थोड़ासा छवि-जाल।
उस छवि में ही छिपा हुआ है, वह भीषण ककाल॥"

कुछ कवियों के रोने और कलपने के कारण उनके निजी जीवन और अभाव हैं। इन कवियों की रचनाओं में ऐसी भावनाएँ मिलती ही रहती हैं:—

"दुख की दीवारों का बन्दी निरख सका न सुखी जीवन।
सुख के मादक स्वप्नों तक से बनी रही मेरी अनबन॥"

काव्य के भीतर भी करुणा को स्थान है पर शोक की ऐसी व्यंजना जो लोगों के हृदय से रही सही आशा-लता का भी उन्मूलन कर दे अनपेक्षित है। हम चाहते हैं कि हमारे कवि

हृदयो में संजीवनी आशा का सचार करते रहे, हमें उत्साहित कर उज्ज्वल आदर्शों की ओर उन्मुख करते रहे और सुन्दर भविष्य के आदर्श चित्र अंकित कर जीवन में सरसता बनाए रक्खे।

हमारे प्रेम के आलम्बन में भी कुछ अस्पष्टता आने लगी है। हमारे यहाँ लौकिक प्रेम को भक्ति-भावना से सदा पृथक् रखा गया है। गोपियों के प्रेम में जो उभय प्रेमों का एकीकरण हो गया है वह भी उतना अनिष्टकर नहीं है। पर उर्दू-कवियों की रचनाओं में कुछ ऐसो विशेपता रहती है जो अपने लौकिक पक्ष में पवित्र नहीं है। वासनाओ का चित्रण ऐसी स्पष्टता से होता है कि वह भक्ति-भावनाओ के अनुकूल पड़ नहीं सकता। पर कवि लोग कभी भी यह मानने को प्रस्तुत नहीं रहते कि उनका प्रेम वासना-प्रधान है। आलम्बन की ऐसी अस्पष्टता हमारे साहित्य मे भी आने लगी है। मुसलमान कवियों को सूफियों के सस्कार परम्परा से प्राप्त हैं, पर हमारे यहाँ कोई भी ऐसी साहित्यिक परम्परा नहीं है। ऐसी अस्पष्ट शृङ्गारी व्यजना लोक-कल्याण के प्रशस्त मार्ग को छोड़ विपरीत दिशा की ओर अग्रसर होने लगती है। इन सस्कारों के साथ साथ उर्दू-साहित्य से भावनाओं के कुछ प्रतीक भी आने लगे हैं। उदाहरण के लिये हमारे कवियों को भी अब पीने का चस्का लगने लगा है। अब तो सुनते हैं कि प्रयाग ऐसे तीर्थस्थान में भी कुछ नव-युवकों ने मधुशाला की स्थापना की है। कवियो के आदर्शों को भी हमने पश्चिम से उधार लेना प्रारम्भ कर दिया है। हमारे

कवि पीयूषवर्षी ही हुआ करते थे अग्निशिखा की ज्वाला नहीं। अग्निशिखा की ज्वाला उगलने वाले कवि तो योरोप के अधिक अनुकूल पड़ेंगे, जहाँ लोग ठंढ के आधिक्य से सिकुड़े रहते हैं:—

अरे तुम अग्निशिखा की ज्वाल।
तुम्हारा सुधापूर्ण गायन॥

सुधापूर्ण गान करने वाले कवि हमारी संस्कृति के अधिक अनुकूल पड़ते हैं, अग्निशिखा की ज्वाला वाले नहीं। हमारे आदर्श तो निराला जी की इन पक्तियों मे अधिक स्पष्ट हैं:—

"नश्वर को अविनश्वर करते तत्काल।
तुम अपने ही अमृत के पावन मृदु सिंचन से॥"

अन्य भाषाओ के सम्पर्क से हमारी भाषाकी आलकारिक शैलियों पर भी प्रभाव पड रहा है जहाँ तक अपनी सस्कृति तथा भावनाओ को सुरक्षित रखते हुए वांछनीय नवीनता की योजना की जा सकती है वहाँ तक किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए। अंग्रेजी में लक्षणा पर निर्भर अनेक अलकृत शैलियाँ हैं जो हमारे साहित्य में चल सकती हैं। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारी सौन्दर्य-वृत्ति अनादि काल से जिन दृश्यों पर मुग्ध होती आई है उनका आकर्षण कभी कम नही हो सकता। किसी पुष्कर विशेष का कोई एक कमल अपने दिन पूरे करके मुर्झा जायगा, पर कवियों के मानस मे कमलो ने अपने जिस रमणीय स्वरूप की प्रतिष्ठा कर ली है वह सदा डहडहा रहेगा। जिस प्रकार अंग्रेजी की लाक्षणिकता का प्रभाव हमारी भाषा पर

पड़ रहा है उसी प्रकार उसके मुहावरों तथा पदावली आदि का भी। 'दृष्टिकोण' ऐसे शब्दों का प्रयोग अब बहुत से लोग करने लगे हैं। वाक्यों के सगठन पर भी अंग्रेजी भाषा का प्रभाव पड़ रहा है। किसी विशेष चमत्कार को दृष्टि में रखकर यदि नवीन ढग के वाक्यों का प्रयोग किया जाय तो बुरा नहीं। पर आवश्यकता के बिना अपनी भाषा की प्रकृति पर आघात पहुँचाना अनुचित है।

अब रहस्यवाद पर भी कुछ कह देना प्रासगिक होगा। आधुनिक ढंग की प्रायः रचनाओं को लोग छायावाद की रचनाएँ समझते हैं। यदि छायावाद से लोगों का तात्पर्य रहस्य-वाद से है तो यह स्पष्ट कह देना उचित होगा कि आधुनिक कवियों मे कोई भी कवि वास्तव में रहस्यवादी नहीं है। यह दूसरी बात है कि प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी की कुछ रचनाओ में रहस्यवाद की सी झलक अवश्य आ जाती है। ठोस भक्ति-वाद तथा शुष्क अद्वैतवाद के बीच की भावना रहस्यमयी होती है। वेदान्तियों का शुष्क अद्वैतवाद जब हृदय-क्षेत्र मे पहुँचकर भावनाओं के अनुकूल हो जाता है तो रहस्यवाद की सृष्टि होती है। ऐसा रहस्यवाद हमें कबीर की रचनाओं में प्राप्त होता है। इसी का कुछ स्वरूप हमें ऐसी रचनाओं में भी मिलता है।

"न जाने कौन अये द्युतिमान,
जान मुझको अबोध अज्ञान,

सुझाते हो तुम पथ अनजान;
फूँक देते छिद्रों में गान।"

हमारे आधुनिक कवियों का अनुराग प्रकृति की ओर भी हो चला है। अब प्राकृतिक दृश्य केवल उद्दीपन रूप ही में नहीं आते, आलम्बन रूप मे भी आने लगे हैं। यह बहुत कुछ अंग्रेजी-साहित्य के सम्पर्क का प्रभाव है।

जिस समय से खड़ी बोली का आन्दोलन उठा उसी समय से उपयुक्त छन्दों के चुनाव का प्रश्न लोगों के सामने है। इस क्षेत्र मे अनेक प्रयोग किये गये और अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं। अन्त्यानुप्रासरहित छन्दों का प्रयोग भी होने लगा है। संस्कृत-साहित्य में तो यह पुरानी परिचित बात है। हिन्दी में कुछ दिनों तक यह अवश्य अनोखा लगेगा। इधर कुछ ऐसे छन्द भी सामने आने लगे हैं जिनका नाम लोगों ने मुक्तछन्द रखा है। इस प्रकार के छन्द में निरालाजी ने तथा प्रसादजी ने अनेक सुन्दर रचनाएँ की हैं। सियारामशरण गुप्तजी ने इसका प्रयोग कुछ अपने ढंग से इन लोगों से भी पहले किया है। प्रसाद जी ने प्रेम-पथिक नामक काव्य में सबसे पहले तुक-हीन रचनाएँ कीं।

इस युग के कुछ कवि

जयशंकर प्रसाद :—द्विवेदी काल की इतिवृत्तात्मक रचनाओं से जब लोग ऊब उठे थे तो प्रसाद जी की कला के दर्शन हुए। इनकी फुटकल रचनाएँ कानन-कुसुम, झरना तथा लहर में संगृहीत हैं। प्रेम-पथिक में एक प्रेम-कहानी सुन्दर ढंग से सुनाई गई है। 'महाराणा के महत्त्व' में प्रताप के जीवन

की एक घटना है। कवि ने इसे पहले व्रजभाषा में लिखा था। पीछे से इसे खड़ी बोली का रूप दिया गया। आँसू नामक सग्रह में स्नेह के केन्द्र के चतुर्दिक् घूमती हुई अनेक मनोवृत्तियों को काव्यमय स्वरूप प्राप्त हुआ है।

'लहर' का कवि 'कानन-कुसुम' के कवि से बहुत आगे बढ़ा हुआ है। लहर की अनेक कविताएँ बहुत ऊँची बन पड़ी हैं। ऐसी रचनाएँ किसी भी भाषा का मस्तक ऊँचा कर सकती हैं। इधर आपका 'कामायिनी' नाम का एक प्रबन्धकाव्य प्रकाशित हुआ है। इसमें सृष्टि के प्रारम्भ की कथा है। सक्षेप में हम कह सकते हैं कि इसमे मानव के अतरग की कहानी कही गई है। इतना निस्सकोच कहा जा सकता है कि इस अकेली पुस्तक ने हमारे साहित्य को बहुत आगे बढ़ा दिया है। तुलसी-कृत रामायण के बाद ऐसी पुस्तक हमारी भाषा में नहीं दिखाई पड़ी। दूसरी उन्नत भाषाओं में भी ऐसी पुस्तकें अनेक नहीं निकलेंगी।

प्रसाद जी की रचनाओं का मुख्य विषय प्रेम है। आँसू मे इसी की वेदी पर आँसू बहाये गये हैं। कवि का वासना-मय प्रेम क्रमश पवित्र होता गया। आँसू का प्रिय इसी लोक का प्रतीत होता है, पर लहर का प्रिय बहुत ऊपर उठा हुआ है। शृङ्गार के वियोग पक्ष की भी कवि ने बड़ी मार्मिक व्यंजना की है। उस वियोग की पीड़ा का तो कहना ही क्या जो उस परोक्ष प्रिय की प्रतीक्षा में है जिसके दर्शन को मानव-जाति न जाने कब से साधना कर रही है और न जाने कब तक

करती रहेगी। इनका प्रेम मंगलमय है। उस दिव्य प्रेम का आभास ऐसी पंक्तियों में मिल सकता है —

घने प्रेम-तरु-तले,
बैठ छाँह लो भव-आतप से, तापित और जले।

कवि की भक्ति-भावना में क्रमशः विकास तथा परिवर्तन होता आया है। इनकी उपासना गोचर सगुण से क्रमशः अव्यक्त अगोचर की ओर बढ़ती गई। धीरे धीरे इनकी भावना रहस्योन्मुख होने लगी।

बौद्धों की दार्शनिकता से प्रसादजी बहुत प्रभावित थे। इनके अनेक नाटकों में इसका आभास मिलता है। लहर में भगवान बुद्ध पर दो बहुत ही सुन्दर रचनाएँ दी गई हैं उनमें की एक रचना तो हमारे साहित्य की चुनी हुई श्रेष्ठ रचनाओं में परिगणित होने योग्य है। देश के प्रति भी कवि का अनुराग था, इसका पता उनकी प्रायः प्रत्येक रचना से मिलता है।

प्रसादजी ने भाषा के भीतर भी कुछ नवीनताओं का समावेश किया है। लक्षमणा की सहायता से अनेक काव्योचित प्रयोगों की सृष्टि की गई है। शब्दों के उपयुक्त चुनाव में आप बहुत कुशल थे। संस्कृत की बहुत ही रस-सिक्त पदावली आपकी रचनाओं में देखने को मिलती है। गत वर्ष आपका स्वर्गवास हो गया। आपके निधन से हमारी बहुत क्षति हुई है। पर दुःख इस बात का है कि कवि के जीवनकाल में हम कवि का अपने जी भर सम्मान न कर सके। इधर साहित्य-सम्मेलन ने उनकी कामायिनी को पुरस्कृत किया है। देवता के उठ जाने पर यह पुष्पांजलि अर्पित की गई है।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' :—आपका लालन-पालन बंग देश में हुआ है और आपकी शिक्षा-दीक्षा बंग-साहित्य में। उस साहित्य का आपको अच्छा ज्ञान है। संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का भी आपने प्रौढ़ अध्ययन किया है। आपके हृदय की उदारता और दूरदर्शिता ही आपको हिन्दी-साहित्य की ओर ले आई। आप पहले 'मतवाला' नामक पत्र में लिखते थे। उन दिनों में लोगों ने आपको हँसी में उडा देना चाहा था पर निराला जी अपनी वीरता से अटल खड़े रहे। आपकी सफलता का प्रधान कारण आपका सच्चा व्यक्तित्व है। यह कवि बहुत ही सच्चा और निष्कपट है। वाणी की और हृदय की ऐसी एकता बहुत कम दिखाई पडती है। इनकी उस समय की रचनाएँ 'परिमल' में प्राप्त हैं। पीछे के गीतों का संग्रह गीतिका में हुआ है। परिमल की अनेक रचनाएँ हमारे साहित्य की अमर निधियाँ हैं। यमुना के प्रति, विधवा, जूही की कली आदि रचनाएँ बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। जो लोग अपनी बुद्धि का तनिक भी प्रयोग नहीं करना चाहते वे प्राय: कहा करते हैं कि इनकी रचनाएँ समझ में नहीं आतीं। इसमें कवि का क्या दोष ? कवि में एक दार्शनिकता प्राय: लक्षित होती है। निरालाजी ने किन्हीं दार्शनिक सिद्धान्तों की नवीन अवतारणा नहीं की है। कवि प्राचीन अद्वैतवाद की भावना पर मुग्ध है, उसे उसने अपने जीवन का सहचर बना दिया है। वह पाठकों-को भी उसी ओर ले जाना चाहता है। कवि ब्रह्मानन्द में मग्न होकर—डूब कर—अपने अस्तित्व को खो नहीं देना

चाहता । उसकी भावना ऐसी पंक्तियों में निहित है:—

आनन्द बन जाना हेय है;
श्रेयस्कर आनन्द पाना है।

अद्वैतवाद पर पूर्ण आस्था रखने के कारण तथा भक्तोचित भावुकता में मग्न रहने के कारण अस्पष्ट रहस्यवाद इनकी कृतियों में टिकने नहीं पाता। इनके मस्तिष्क के पास पहुँच कर वह सोऽहम् से मिलती हुई भावना में परिवर्तित हो जाता है तथा हृदय मे पहुँचते ही प्रेम की सुकुमारता में, जो एक ओर परोक्ष-प्रिय पर अवलम्बित है और दूसरी ओर उसीके व्यक्त गोचर स्वरूपो पर। परोक्ष-प्रिय का मधुर आकर्षण सोऽहम् की शुष्क भावना को टिकने नहीं देता, भक्ति की भावुकता में परिणत कर देता है। कवि का हृदय मानव-स्वभाव-सुलभ सहानुभूति से पूर्ण है। इसी सहानुभूति का आभास 'विधवा' ऐसी रचनाओं मे मिलता है। यहीं तक नही कवि की सहानुभूति का विस्तार मनुष्य-समाज की परिधि के बाहर पत्रों, पुष्पो तक है। उसे उस निष्ठुर माली के प्रति भी क्षोभ प्रकट करना पड़ा है जो कुछ फूटी कौड़ियों के लिए सुन्दर से सुन्दर फूल को तोड़ डालता है। निराला जी निराशावादी नहीं हैं पर ऐसे आशावादी भी नही हैं कि दुःखो के अस्तित्व की उपेक्षा करें। आप भी कभी कभी उस लोक की कल्पना कर लेते हैं जहाँ इस ससार मे प्राप्त होने वाले दुःखों, अभावा का अस्तित्व ही न होगा।

कवि ने प्रेम के जो उद्गार प्रकट किए हैं वे पवित्रता की सीमा से बाहर नही गये हैं। 'जलद के प्रति, जागो फिर एक

वार' ऐसी रचनाओं में देशभक्ति के भी भाव मिलते हैं। आप में चित्र अंकित करने की अच्छी क्षमता है। कवि कुछ स्वरूपों को शब्दों की ध्वनि की सहायता ही से अंकित कर लेता है। ये अनावश्यक अलकारों के पक्ष में नहीं हैं। इन्होंने विशेषण-विपर्यय नामक अलकार का अच्छा प्रयोग किया है। मुक्तछन्द के आप सिद्ध लेखक हैं। शब्दों के प्रयोग के विषय में आप व्यावहारिकतावादी हैं। संस्कृत की कोमल-कान्त-पदावली को अपनाते हुए भी विदेशी शब्दों के बहिष्कार के पक्ष में नहीं हैं। आपकी प्रतिभा ने आपके लिये एक महत्त्व का स्थान बना दिया है। आधुनिक साहित्यिक विचार-धाराओं तथा भाव-धाराओं के निर्माण में आपका कितने महत्त्व का स्थान है इसका निर्णय भविष्य करेगा।

सुमित्रानन्दन पन्तः—द्विवेदी जी के सम्पादन-काल ही में पन्त जी के दर्शन हुए थे। जैसा कि हमारे साहित्य में प्रायः होता है उस समय लोगों ने आपकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया। ध्यान देना तो दूर रहा, लोगों ने ऐसी उपेक्षा तक की जिससे कवि को कुछ उदास ही होना पड़ा होगा। पर प्रतिभा अपने उपासक स्वय बना लेती है। समय जाते देर नही लगी और अनायास आपका स्थान प्रथम कोटि के साहित्यिकों की पक्ति में दिखलाई पडने लगा। आपकी भाषा के माधुर्य ने सबसे पहले लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया। कोई भी भाषा धीरे धीरे मँज कर निखर पाती है। खड़ी बोली बहुत दिनों तक अपने कर्कश स्वरूप में ही सामने रही। इधर कुछ कलाविदों

के सतत उद्योग से उसमें जो माधुर्य आने लगा है उसका श्रेय पन्तजी को कम नहीं है। जैसी मिठास से यह कर्कश भाषा इनकी वाणी से निकली वैसी मिठास से और किसी कवि की वाणी से नहीं। आपने कुछ स्वच्छन्दता से भी काम लिया है। हिन्दी आपकी मातृभाषा नहीं है अत. उन दिनों मे जो व्याकरण की त्रुटियाँ मिलती थीं उनकी ओर उतना ध्यान देना उचित न होगा। इधर शब्दों के लिङ्गनिर्णय के विषय मे आपने अपने पृथक् व्यक्तिगत मत को सामने रखा है। आपकी सम्मति में शब्दों का लिङ्ग अर्थ के अनुसार होना चाहिए। आपकी कविता में कुछ अक्षरो को विशेष प्रकार से पढ़ना पड़ता है। प्रायः णकार और शकार का आप कुछ निजी उच्चारण करते हैं। आपकी कविता के अन्तर्गत ये दोनों वर्ण बहुत महत्त्व रखते हैं।

प्रायः रचनाओं में स्नेह-वृत्ति की स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है। आपके प्रेम-विषयक विचार बहुत ही कोमल हैं। वह प्रेम आँधी के समान नहीं उठा है, एक मीठी कसक के समान सारे जीवन में व्याप्त होना चाहता है। वियोग की अवस्था में भी कवि आपे से बाहर नहीं होता। वह उस अदृश्य शक्ति के अस्तित्व का सदा अनुभव करता रहता है जिसके मनमाने सकेतों पर प्रेम की क्रीडाएँ होती रहती हैं। प्रेमवृत्ति की परिधि के भीतर आने वाली जितने सुकमार भावों की व्यजना ग्रन्थि से छोटे ग्रन्थ में हुई है उतनी कम स्थानो पर मिल सकती है— इसमें कवि ने एक प्रेमकथा

गाई है। यह एक ही पुस्तक कवि को हिन्दी-साहित्य में अमरत्व प्रदान करने के लिये पर्याप्त है। इनकी प्रारम्भ की रचनाओं में कभी कभी नैराश्य के भी दर्शन हो जाते थे। यह निराशा अब आशा की ओर बढ़ रही है। 'पल्लव' की निराशा ने 'गुजन' मे एक परिवर्तित रूप धारण कर लिया है।

इनकी दार्शनिकता का भी एक अपना निजी स्थान है, कवि को विचारधारा जिन गूढ़ तत्त्वों तक पहुँचती है, उन तक वह पाठकों को नहीं ले जाना चाहता। वह तो जीवन जैसा है उसको उसी रूप मे देखना चाहता है। एक भोले पक्षी के समान उसे अनन्त आकाश में उडने ही में आनन्द मिलता है, वह उस नीले परदे के उस पार नही झाँकना चाहता। कभी कभी परदे के पार से उसे एक मूक-निमत्रण मिला करता था। पर आजकल न तो वह मूक निमत्रण मिलता है न कवि उसके फेर में पडता है। दुनिया के इसी आँगन में वह स्वर्ग की सृष्टि करना चाहता है:—

" जग के उर्वर आँगन में,
बरसो ज्योतिर्मय जीवन "।

पन्तजी का रहस्यवाद भक्ति-भावना-समन्वित है। उसका अन्त शुष्क जिज्ञासा में नहीं होता। साधक अपने साध्य का और भी साक्षात् दर्शन कर लेता है और क्रमशः आगे बढ़ता हुआ उससे स्निग्ध सान्निध्य स्थापित करता है।

कवि की कला-कुशलता में भी कुछ विशेषताएँ हैं—

इन्होंने भिन्न भिन्न वर्णों का अच्छा निरीक्षण किया है

यह निरीक्षण इनकी रचनाओं में प्राय: प्रतिफलित हुआ है। इनके दृश्यों के वर्णनों में चित्रोपमता रहती है। उनके शब्दों के प्रयोग में भी कुछ कारीगरी रहती है। इन्होंने कुछ शब्दो में श्लेष से मिलते हुए एक अद्‌भुत चमत्कार की योजना की है। इनकी आलंकारिक कल्पनाओ में नवीनता तथा सार्थकता मिलती है। सांग रूपकों के ढग का अप्रस्तुत-विधान भी कवि ने अनेक स्थानो पर सुन्दर ढग से किया है। कुछ कविताओ मे तो कवि कल्पना करते करते थकता ही नहीं है। पल्लव में नक्षत्रों पर जो रचना को गई है वह उदाहरण रूप में उपस्थित की जा सकती है। इनकी कुछ रचनाओं पर अंग्रेजी-साहित्य की भावनाओं का भी प्रभाव पड़ा है इधर आपको समाज-सुधार की भी धुन सवार हुई है। पर आपकी ऐसी रचनाएँ अभी तक तो लोगो को रुची नहीं। अच्छा होता यदि कवि उपदेशक न बन कर भोला कवि ही बना रहता है।

गोपालशरण सिंह:—आप खड़ी वोली में व्रजभाषा के ढग की रचना करते हैं। प्रचीन छन्दों में खड़ी बोली अच्छे ढग से उतारते हैं आपकी पदावली परिचित और सरल होती है। चलते अलंकारों का प्रयोग करते हैं। आपकी शृङ्गारिक भावनाएँ अत्यन्त हृदय-ग्राही चलती हैं। आपकी रचनाओं के अनेक संग्रह निकल चुके हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी:—ये 'भारतीय आत्मा' के नाम से रचनाएँ करते हैं। खँडवा का प्रसिद्ध पत्र कर्मवीर इन्हींके सपादकत्व में निकलता है।

ये राष्ट्रीय कवि हैं। आपकी इस विषय की रचनाएँ सच्ची और वास्तविक अनुभूति से पोषित हैं। शृङ्गार के क्षेत्र में भी आपकी अच्छी पहुँच है, पर बेडियों की झकार सुनने में आप इतने तल्लीन हो जाते हैं कि कोमल शृङ्गारिक भावनाओं में उतना समय नहीं नष्ट कर पाते। उधर भी जब आप जाते हैं तो इधर की ही बातें करते रहते हैं।

सियारामशरण गुप्त :—आपकी भावुकता सहानुभूति तथा पर-दुःख-कातरता में प्रकट होती है। आपका सहानुभूति-पूर्ण हृदय रचनाओं में छलका पडता है। आपने अनेक कहा-नियाँ पद्यबद्ध की हैं। आपकी रचनाओं में भाषा एक चम-त्कारपूर्ण प्रभाव से ढली है। आपकी रचनाओं के अनेक सग्रह निकल चुके हैं।

अनूप शर्मा :—आप वीर रस के प्रसिद्ध कवि हैं। आपकी ऐसी कृतियाँ अत्यन्त ओजपूर्ण हुई हैं। कुछ कविताएँ प्राचीन वीर पुरुषों की प्रशस्तियों के रूप मे हैं, कुछ स्वतत्र उद्बोधन के रूप में। इधर सिद्धार्थ नाम का एक प्रबन्धकाव्य भी लिखा है। कुछ स्पष्ट दोषों की ओर अगर उतना ध्यान न दिया जाय तो यह कहना चाहिए कि ग्रन्थ एक सफल रचना है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' :—आपका जीवन ही कवित्व पूर्ण है। ऊपर से कठोर सा प्रतीत होता हुआ यह कर्मवादी भीतर से बहुत ही सरस सुकोमल है। कौन जानता है, कर्म की कठोर बलिवेदी पर कितनी ही वासनाओं की सुकुमार पुकार का कठोर हाथों से मुँह न बन्द कर दिया गया होगा। इन सबका स्वरूप

हमे इनकी रचनाओ मे मिलता है। अतृप्त प्रेम की पीड़ा शृङ्गारी रचनाओं में बहुत ही मार्मिक ढग से आई है। पर कवि को रगमहल में भी वेड़ियों की झकार सुनाई पड़ती रहती है। जब वह सुख-निद्रा में सोता है तो विराट् तांडवो के स्वप्न देखा करता है और जब जीवन के कोलाहल मे इधर उधर व्यस्त मारा मारा फिरता है तो न जाने कितनी दूर के अज्ञात कोने से किसी के मार्मिक और सूक्ष्म संकेतों को पाकर अकस्मात् चौक पड़ता है।

महादेवी वर्मा :—आपकी रचनाओ के नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्य गीत ये चार संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी कविताओ की दो विशेषताएँ है, अनन्त विश्वव्यापी दुःख का वर्णन तथा रहस्योन्मुख भावना का चित्रण। आपकी पीड़ा तथा कसक को करुण रस के अन्तर्गत नही लिया जा सकता। उसे हम वैराग्य के भीतर ले सकते हैं। दुःख का अनुभव करते करते आप दुःखमयी हो गई हैं। दुःखवाद तथा नैराश्य की छाप जितनी आपकी रचनाओ पर पड़ी है उतनी आजकल के किसी हिन्दी कवि पर नहीं। आपकी रचनाओं पर अग्रेजी की आलकारिकता, भाषा-शैली, भाव-धारा आदि का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

सुभद्राकुमारी चौहान :—देवी जी की रचनाओ के विषय इसी लोक के हैं। देश की पुकार पर मर मिटने वाले पुरुषों और देवियों की स्मृति में आँसू बहाने में इन्हे अधिक संतोष होता है इनकी सीधी-सादी देशभक्ति की रचनाएँ

बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। इनकी झाँसी की रानी जितनी लोक-प्रिय हुई उतनी आजकल के किसी कवि की रचना न हो सकी। वात्सल्य रस की रचनाएँ भी हृदय-स्पर्शी हुई हैं। ठुकरा दो या प्यार करो, मानिन राधे, प्रियतम से आदि शृंगारी रचनाएँ बहुत ही मीठी हुई हैं। आपकी रचनाओं में घरेलू मिठास है।

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज':—इनकी शृंगारी रचनाओं में अपने ही निजी जीवन की अनुभूति का स्वर मिला है। इनका पोषण वासना से नहीं होता, दार्शनिकता से होता है। कविताएँ सच्ची उमग और सच्चे उल्लास से पूर्ण हैं। पंक्तियाँ इतनी सधी हुई निकलती हैं कि एक बार सुन लेने पर फिर भुलाई नहीं जा सकती।

भगवतीचरण वर्मा:—आपकी रचनाओं के कई सग्रह निकल चुके हैं युवकों के आप प्रिय कवि हैं। रचनाओं में स्फूर्ति और प्रवाह रहता है। कवि किसी दार्शनिक परिपाटी के फेर मे न पड़ कर अपनी काव्यानुभूति की मदिरा से मत्त कुछ कहता रहता है। जिसका जी चाहे सुने, न सुने तो कवि को इसकी चिन्ता नही।

गुरुभक्त सिंह 'भक्त':—भक्तजी प्रकृति के सच्चे अनुरागी हैं। इनकी अंग्रेजी वेश-भूषा के भीतर भारतीय ग्रामीणता छिपी रहती है। भारतीय प्रकृति के प्रति जितना आपके हृदय में मोह है उतना कम स्थानों पर मिलेगा। इनके हृदय की सहृदयता 'चपला' नामक रचना में अवतीर्ण हुई है। इधर आप

का 'नूरजहाँ' नामक प्रबन्धकाव्य प्रकाशित हुआ है। इसमें कवि ने भाषा का एक नवीन आदर्श सम्मुख रक्खा है। भाषा बहुत ही मँजी हुई तथा मुहावरों से पुष्ट है। ग्रथ मे नूरजहाँ की जीवन-गाथा गाई गई है। यह गाथा नूरजहाँ के माता-पिता के फारस देश से प्रस्थान करने से लेकर नूरजहाँ के द्वारा जहाँगीर के साथ विवाह करने की सम्मति देने तक चलती है। इस रचना में आप बहुत सफल हुए हैं।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक कवि भारतीय के चरणों पर अपनी पुष्पांजलि अर्पितकर रहे हैं। गोपालसिंह नेपाली, हरिकृष्ण प्रेमी, आरसीप्रसाद सिंह तथा दिनकर जी ऐसे कवियों को देख कर बड़ी आशा है कि अब खड़ी बोली कविता के लिए मँज चुकी है। आशा है अब हमे और भी श्रेष्ठ कवियों के दर्शन होगे।

उपसंहार

सैकड़ो वर्ष तक हमारा साहित्य पद्यमय रहा जिसकी भाषा व्रज रही। अँगरेजी राज्य प्रारभ होने पर खड़ी बोली के ग्रहण किये जाने का प्रश्न उठा। यह प्रश्न उठने के पहले ही खड़ी बोली बाजारू बोली के रूप में सम्पूर्ण उत्तरापथ में फैल चुकी थी। इसका मुख्य श्रेय मुसलमानों को था, जिन्होंने इसे साहित्य में अपनाया था तथा जिसे वे जहाँ जाते थे अपने साथ लिये रहते थे। मुसलमानो ने खड़ी बोली के स्वरूप को निश्चित किया था, उसके स्वरूप की अनेकरूपता दूर की थी, प्रयोगों की सीमाएँ निश्चित की थीं, मुहावरो को माँजा था तथा उसे बोली से साहित्यिक भाषा के पद पर पहुँचाया था। खड़ी बोली का इतिहास बहुत पुराना है, पर इसके स्वरूप को सुधारने का बहुत कुछ श्रेय उर्दूवालों को है। हिन्दी की दुनिया में खड़ी बोली नितान्त अल्हड़रूप में नहीं आई थी, वह अपने पैरों खड़ी होने लगी थी। प्राय पचास वर्षों से खड़ी बोली ही हमारे साहित्य की भाषा है। गद्य-क्षेत्र में यह भाषा कुछ पहले ग्रहण कर ली गयी थी, पर उधर कुछ विशेष काम न हो पाया था। वास्तविक काम भारतेन्दु के समय से प्रारंभ होता है। उस समय जितने लेखक थे उतने ही भाषा के स्वरूप थे। उर्दू जानने वाले लेखकों की भाषा चलती हुई होती थी, संस्कृत के पण्डितों की भाषा शिथिल तथा भारी होती थी।

पीछे से व्याकरण के नियमों की उपेक्षा की जाने लगी, ऐसा वहुत कुछ उन लोगों के द्वारा होता था जो दूसरे साहित्यों के ज्ञाता होते हुए भी हिन्दी विना जाने ही लिखना प्रारंभ कर देते थे। ये लोग हिन्दी को इतनी तुच्छ समझते थे कि उसके सीखने की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं करते थे। ऐसे लोगो का नियन्त्रण प० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने किया। उन्होंने व्याकरण तथा सस्कार का पूरा ध्यान रखा। इस प्रकार भाषा भटकने से वच गई। द्विवेदीजी के सामने भाषा में वहुत कुछ एकरूपता आ गई। आजकल हम लोग देखते हैं कि पत्र-पत्रिकाओं में जो भाषा देखने को मिलती है उसमे वहुत कुछ एकरूपता रहती है। कुछ लोगां को इधर विदेशी शव्दो के वहिष्कार तथा संस्कृत के शब्दों के अनावश्यक प्रयोग का अधिक आग्रह हो गया है। काशी के पण्डितो मे यह भाषादोप प्राय: पाया जाता है। हमें यह न भूलना चाहिए कि काशीवालों ने जितनी हिन्दी की सेवा की है उतनी और कही लोगों ने नहीं की। पर साथ ही काशीवालों से हमें यह प्रार्थना करनी है कि भाषा के स्वरूप को इतने ऊपर न चढ़ाइये कि उसका साधारण जनता से सम्पर्क छूट ही जाय। जिन भावों को व्यक्त करने वाले प्रयोग हमारी भाषा में मिलते हैं उनके लिए सस्कृत के प्रयोग करना व्यर्थ का दुराग्रह है। इसी कारण रायवहादुर वा० श्यामसुन्दर दास तथा प्रसादजी की भाषा शैलियाँ नितान्त वनावटी हो गई हैं। यह बात काव्यों में उतनी नहीं खटकती जितनी नाटको तथा कहानियों में। प्रसाद जी जव दाल के

स्थान पर द्विदली का प्रयोग करते थे तब उनसे यही कहने का जी होता था कि यदि आपको दाल इतनी बुरी लगती है तो कृपा कर सोमरस ही न पी लिया करिये। उधर बाबू साहब की भाषा के बोझ के नीचे पाठक कराह उठता है। इस प्रकार की बनावटी भाषा का सबसे अप्रिय स्वरूप पण्डित चण्डीप्रसादजी की रचनाओं मे प्राप्त होता है। कुछ लोग विदेशी शब्दों के बहिष्कार पर आजकल भी जुटे हुए हैं। इनका प्रयत्न व्यर्थ है। जहाँ जहाँ खड़ी बोली बोली जाती है वहाँ वहाँ अरबी-फारसी के शब्द बोले ही जाते हैं। ऐसे शब्दों के निकालने की अब आवश्यकता नहीं है। इन शब्दो ने अपना स्थान निश्चित कर लिया है, उनके बिना वह स्थान सूना सा लगेगा। इन शब्दों से हमारी भाषा को अभिव्यंजन-शक्ति बढ़ी है। एक अर्थ को बताने वाले शब्दो ने भी प्रयोग के द्वारा अर्थ की भिन्नता स्थापित कर ली है। उत्तर और 'जवाब' एक ही नहीं रह गये हैं। नौकर के उत्तर देने पर हम बुरा नही मानते पर उसके जवाब देने पर आपे से बाहर हो जाते हैं। इसी प्रकार और शब्दों मे भी हुआ है। विदेशी शब्दों के लिये यहाँ स्थान है, और सभी जीवित भाषाओं में रहता है।

वाक्य-विन्यास का भी एक प्रश्न है। संस्कृत-साहित्य में गद्य का विकास न होने से हमें वहाँ से अधिक सहायता न मिल सकी। उर्दू ने हमें इस विषय में काफी सहायता दी है। इसे न मानना कृतघ्नता है। इधर जब से बँगला तथा मराठी आदि साहित्यों का पढ़ना प्रारंभ हुआ है तब से इन भाषाओं की वाक्य-

रचना यहाँ आई है। वाक्य-रचना पर सबसे अधिक प्रभाव अँगरेजी भाषा का पड़ा है। यहाँ तक कि विदेशी प्रयोगों के ग्रहण किये जाने के परम विरोधी पं० रामचन्द्र जी शुक्ल की भाषा पर भी अँगरेजी का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इनकी वाक्य-रचना के भीतर अँगरेजी ढंग की विचारधारा स्पष्ट देखी जा सकती है। अँगरेजी के संबंध से हमारी भाषा ने बहुत उन्नति की है। इसे अस्वीकार करने से हमारा गौरव नहीं बढ़ता है। अँगरेजी के मुहावरों के अनुवाद कर लेने की प्रवृत्ति को अवश्य रोकना चाहिए। ऐसा बाबू वृंदावनलाल तथा श्री जैनेन्द्रकुमार जैन ने बहुत अधिक किया है। हम जैनेन्द्र जी से कहेंगे कि कृपा कर परख से आगे मत बढ़िये। सुनीता की भाषा ने हमारी शैली पर आघात पहुँचाया है। इसे स्वीकार करके इससे विरत होने ही में कल्याण है। व्यर्थ की हठ आँखों में धूल नहीं झोंक सकती। सब मिलाकर हमारे गद्य-साहित्य ने पर्याप्त उन्नति कर ली है। ऊँची से ऊँची बातों को व्यक्त करने के लिये तथा साधारण से साधारण बात को कहने के लिये हमारी भाषा समर्थ हो चली है। विकास का क्रम आशाजनक है। नित्य निकलने वाले पत्रों और पत्रिकाओं में भाषा के जिस समुन्नत रूप का प्रयोग होने लगा है उसे देखकर हमें कुछ सन्तोष अवश्य होना चाहिए। मध्यप्रान्त, बंगाल तथा पंजाब से भी हिन्दी-पत्र निकल रहे हैं। इतनी इतनी दूर तक फैली रहने वाली भाषा अपने स्वरूप की रक्षा बड़ी सतर्कता से कर रही है। उधर बोली के रूप में खड़ी बोली दूर दूर तक फैलती जा रही है। आसाम तक के अनेक

नगरों की भाषा खड़ी बोली हो चुकी है। बाजारों में तो यह सम्पूर्ण देश में सुनी जा सकती है।

काव्यक्षेत्र में अभी कल तक ब्रजभाषा का बोलबाला था। अब कुछ दिनों से खड़ी बोली ने अपना आसन विश्वासपूर्वक जमाया है। ब्रजभाषा भी चली जा रही है, और जब तक सूर और तुलसी ऐसे महाकवियों का साहित्य चल रहा है तब तक चलती रहेगी। इस काल में भी ब्रजभाषा में प्रथम कोटि के कवि हुए हैं, उपस्थित हैं और होते रहेंगे। काव्यक्षेत्र में प्रायः बीस सालों से काम हो रहा है। इतने ही अल्पकाल में प्रसाद, मैथिलीशरण, निराला, महादेवी और पन्त ऐसे कवि सामने आ चुके और आ रहे हैं। साकेत और कामायनी ऐसी रचनाओं ने हमें बहुत आशा दिलाई है। प्रसाद ने एक बार कहा था 'कामायनी लिखकर मुझे सन्तोष है'। हिन्दी में ऐसी दूसरी पुस्तक नहीं है। दूसरी भाषाओं से तुलना करने का यह समय नहीं है। विद्वानों की आलोचनाएँ इसका महत्त्व और स्थान स्वय निर्धारित कर देंगी। निराला, पन्त और महादेवी की रचनाओं ने एक युग बनाया है। इन रचनाओं ने हमारे साहित्य को बहुत ऊँचा किया है। इस उन्नति को देखकर यह विश्वास ही नहीं होता है कि यह करामात केवल बीस वर्षों के अल्पकाल में हुई है। इधर रामकुमार वर्मा, गुरुभक्तसिंह भक्त, गोपालसिंह नेपाली, बच्चन ऐसे अनेक कवि सामने आ रहे हैं। काव्य में नए नए राग भी सुनाई पड़ रहे हैं। किसी महाकवि के आने के लिये

भूमि प्रस्तुत हो रही है। जो हुआ है वह सन्तोषजनक है, आगे के लिये आशा बँधी है।

कहानी, उपन्यास और नाटकों के क्षेत्र में भी उन्नति हो रही है। हिन्दी का कहानी-साहित्य पर्याप्त समुन्नत हो गया है। प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन जी का पग तो जैसे पीछे पड़ा जा रहा है। इधर अनेक नवीन लेखक आ रहे हैं। जिनकी प्रतिभा पर हम मुग्ध हो रहे हैं और औरों को भी होना पड़ेगा। हमारी कहानियों के भीतर मानव-समाज की विविध परिस्थितियों के वहुत ही व्यापक चित्र आ रहे हैं। इन कहानियों ने देश और काल के प्रतिवन्ध हटा दिये हैं। हमारे कहानी-लेखकों ने अपने हृदय की सहानुभूति का बहुत विस्तार कर लिया है। कहानियों की कला भी निरखने लगे हैं। उपन्यास-क्षेत्र में अभी उतनी उन्नति नहीं हुई है। इक्के-दुक्के उपन्यास प्रकाशित होते रहते हैं, पर अभी कोई प्रेमचन्द सामने नहीं आये। हम तो यह चाहते थे कि श्री जैनेन्द्रकुमार जी अपनी दार्शनिकता को छोड़कर सामान्य भावभूमि पर उतरते। सुनीता के लिये हिन्दी में स्थान नहीं है। नाटकों के क्षेत्र में हम जो चाहते थे वह अभी तक नहीं हो सका है। हमने अपने आदर्श अभी तक नहीं बनाये हैं। हमारा रंगमच अभी कहाँ है? प्रसादजी के नाटकों में अभिनय करते समय असुविधाएँ सामने आती रहती हैं। अन्य नाटककारों में अभी उतनी भी प्रतिभा नहीं दिखाई पड़ती। हम प लक्ष्मीनारायण जी मिश्र की ओर बड़ी आशा से दृष्टि लगाये हुए हैं। उनके नाटक

अच्छी दिशा की ओर बढ़ रहे हैं। आशा है यदि आप इस क्षेत्र में काम करते रहे तो हमारी अभिलाषाएँ सफल होंगी। आपने जो नाटक लिखे हैं वे बहुत महत्त्व के हैं पर हम लोगों ने उनकी वैसी चर्चा भी नहीं की।

साहित्य के अन्य अङ्गों की भी पूर्ति तत्परता से हो रही है। इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन, धर्म-विज्ञान, विज्ञान, मनोरजन आदि का साहित्य भी विस्तृत हो रहा है। इन क्षेत्रों में मौलिक ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के राजपुताने के इतिहास ने हमारा गौरव बढ़ाया है। राजनीति पर जो पुस्तकें निकली हैं वे प्रायः या तो अनुवाद हैं या सकलन। हम तो यह चाहते हैं कि श्रीमुकुन्दीलाल श्रीवास्तव की 'साम्राज्यवाद' ऐसी पुस्तकें लिखी जायँ। श्री प्राणनाथ विद्यालकार, प्रोफेसर राधाकृष्ण झा श्री भगवानदास केला ने अर्थशास्त्र पर अच्छी पुस्तकें लिखी हैं। पर प्रायः इतिहास की पुस्तको में स्वतन्त्र अन्वेषण, अर्थशास्त्र की पुस्तकों में स्वतन्त्र मनन तथा राजनीति की पुस्तकों में अपने देश को दृष्टि में रखकर स्वतन्त्र चिंतन का अभाव ही सा रहता है। धर्म, वेदान्त, योग आदि पर भी अनेक पुस्तकें निकली हैं। बौद्धधर्म पर भी हिन्दी में अच्छा साहित्य प्रस्तुत हो रहा है। श्री राहुल सांकृत्यायकन की 'बुद्धचर्या' भगवान के जीवन-चरित्र तथा बुद्धधर्म की मुख्य मुख्य बातों का अच्छा परिचय देती है। आपने बौद्धधर्म की अनेक पुस्तको के अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। डा० भगवानदास जी ने 'समन्वय' नामक एक गंभीर

आध्यात्मिक पुस्तक लिखी है। श्री गंगाप्रसाद ,एम. ए. ने भी आस्तिकवाद, अद्वैतवाद आदि अनेक पुस्तकें लिखी हैं। अनेक धार्मिक पुस्तकें गीता प्रेस से निकलीं और निकल रही हैं। कल्याण के विशेषांक भी अमर और स्थायी साहित्य की वस्तु हैं। लौकिक विज्ञान से संबन्ध रखनेवाली पुस्तकें भी निकल रही हैं। हिन्दुस्तानी एकेडेमी से ऐसी अनेक पुस्तकें निकली हैं।

अनेक संस्थाएँ हिन्दी के लिये अच्छा काम कर रही हैं। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का उल्लेख हो चुका। इस सभा ने पुरानी पुस्तकों की खोज के क्षेत्र मे सबसे अधिक काम किया है। इसी खोज के फलस्वरूप अनेक प्राचीन लेखक तथा अनेक लेखकों की पुस्तकें प्रकाश मे आई हैं। सभा के द्वारा संचालित पत्रिका में इस खोज का विवरण निकलता रहा है। इसी सामग्री के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने मिश्रबन्धु-विनोद प्रस्तुत किया है। प्रयाग की दोनो संस्थाएँ हिन्दी-साहित्य सम्मेलन तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी अच्छा काम कर रही हैं। और भी अनेक संस्थाएँ हैं जिनकी सेवाएँ साधारण नहीं हैं।

इधर अन्य प्रान्तों में भी हिन्दी का प्रचार हो रहा है। मद्रास प्रान्त में हिन्दी की सबसे अधिक चर्चा है। भिन्न भिन्न भाषाओं के मद्रास प्रान्त में एक अन्य भाषा की आवश्यकता है जो साधारण भावविनिमय का काम कर सके। मद्रासी हिन्दी सीख भी बड़ी शीघ्रता से लेते हैं। एक मद्रासी विद्यार्थी ने काशी विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. पास किया है। साहित्यसम्मेलन से अनेक विद्यार्थियो ने हिन्दी-साहित्य लेकर

उत्तमा परीक्षा में सफलता प्राप्त की है।

इधर कुछ दिनों से हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने या बना देने का प्रश्न सामने है। हिन्दी ने स्वयं अपनी योग्यता से यह पद प्राप्त कर लिया है। राष्ट्रभाषा किसी के बनाने से नही बनती। कोई स्वाभाविक प्रवाह रोका भी नहीं जा सकता। अब अन्य प्रान्तवाले हिन्दी में अपनी 'हुकूमत' चलाना चाहते हैं। वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा बना देने का पारिश्रमिक माँगते हैं। पर हम तो उत्कोच देने के पक्ष में नही हैं। हिन्दी-भाषा या साहित्य में हम दूसरों के कहने से ऐसे परिवर्तन करने को प्रस्तुत नहीं हैं जिनसे हमारी भाषा का स्वरूप ही विकृत हो सकता है। हमें राष्ट्रभाषा के लोभ में पड़कर अपना स्वरूप नहीं बिगाड़ना है। हमें अपने साहित्य को समुन्नत बनाने का ध्यान रखना चाहिए।